आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० • अंक-५ • जनवरी-२०२६

पोष शुक्ल-१५
ता. ०३-०१-२०२६
श्री जम्बूद्वीप-बाहुबली मुनीन्द्र
तृतीय वार्षिक दिन

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• हे जीव! शुद्धनयसे सब जीव शुद्ध ही हैं—ऐसा जानकर तू कभी भी शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनाको न छोड़। वास्तवमें शुद्धनयका सेवन करनेवाला जीव सदा शुद्ध रहा करता है।१३५। (श्री नेमीश्वर वचनामृत-शतक, श्लोक-१६)

• अशुद्ध संसारभावमें जीवके परिणाम ही व्याप्य व्यापक होते हैं। इससे उस परिणामको ही निश्चयसे अशुद्धभावका कर्ता कहनेमें आता है। भले निश्चयसे द्रव्यको संसारका कर्ता कहनेमें आवे तो भी कोई दोष नहीं परन्तु ज्ञानदृष्टिमें जीवद्रव्यको संसारका अकर्ता सदा समझना चाहिये।१३६। (श्री दीपचंदजी, आत्मावलोकन, पृ. १२४)

• इस चैतन्य-आत्माका स्वरूप वास्तवमें ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मसे भिन्न, रागादि भावकर्मोंसे रहित और शरीरादि नोकर्मसे रहित है, उसे यथार्थपने जानना चाहिये।१३७।

(श्री परमानंद स्तोत्र, श्लोक-८)

• बँधा होवे वह छूटे, इसलिये बँधेको तो मोक्ष कहना ठीक है, और बँधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते हैं? उसी प्रकार यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर बंधा हुआ नहीं है, इस कारण मुक्त हो कहना ठीक नहीं है। बंध भी व्यवहारनयकर है और मुक्ति भी व्यवहारनयकर है, शुद्ध निश्चयनयकर न बंध है, न मोक्ष है और न अशुद्धनयकर बंध है, इसलिये बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये। यहाँ यह अभिप्राय है कि सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन पुरुषोंको उपादेय है, अन्य सब हेय हैं।१३८। (श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि. १, गाथा-६८)

• अनेक प्रकारके विलासवाले कर्मोंके साथ मेरी एकता होने पर भी जो उत्कृष्ट ज्योति सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और उत्कृष्ट आनंदस्वरूप है वह ही मैं हूँ, उसके सिवाय मैं दूसरा नहीं, ठीक भी है—स्फटिकमणिमें काले पदार्थके सम्बन्धसे कालापन उत्पन्न होने पर भी वह, तो मणिसे भिन्न ही होता है। कारण यह है कि मैं लोकमें जो विकार होता है वह दो पदार्थोंके निमित्तसे ही होता है।१३९।

(श्री पद्मनंदी आचार्य, पद्मनंदी पंचविंशति परमार्थविंशति, श्लोक-७)

• आत्मा, आत्मामें निजआत्मिक गुणोंसे समृद्ध आत्माको एक पंचमभाव में जानता है और देखता है, उसने सहद एक पंचमभावको छोड़ा नहीं है तथा अन्य ऐसे परभावको कि जो वास्तवमें पौद्गलिक विकार है उसे वह ग्रहण नहीं करता।१४१।

(श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार टीका, श्लोक-१२९)

वर्ष-20
अंक-5

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2082
January
A.D. 2025

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा-८० के प्रवचनमेंसे)

अर्हंतके स्वरूपको जानने पर स्व आत्मस्वरूपको जानता है।

अंतर अनुभवके समय ज्ञानस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होती है। श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है : ''देह भिन्न केवल चैतन्यका ज्ञान जो''।

इसमें 'केवल' पर खास जोर है। शरीरादि तो नहीं लेकिन द्रव्य, गुण, पर्याय या कर्ता, कर्म, क्रिया–ऐसे भेद भी नहीं। मात्र चैतन्यपिंड एकरूप वस्तुका ही ध्यान है। यदि उस समय सम्यग्दर्शन वर्तता है तो उसे सम्यग्दर्शन, प्रथम धर्म कहते हैं। उसे पंचमी करणलब्धि पूर्ण हुई सम्यग्दर्शन हुआ—ऐसा कहनेमें आता है।

सामान्य दीपकका प्रकाश अस्थिर होता है लेकिन मणिका प्रकाश निर्मल और अकंप अर्थात् हलन–चलन बिनाका होता है और अंधकारका नाश करता है। वैसे सम्यग्दृष्टि जीवको निर्विकल्प परिणति हो गई होनेसे मोहका नाश होता है। मिथ्यात्वकी पर्याय प्रथम थी उसका अब कोई आश्रय नहीं रहा इसलिये मोह अवश्य नाश होता है। यहाँ प्रलय शब्द पुरुषार्थकी उग्रता दर्शाता है। इस प्रकार आचार्य भगवान कहते है कि मोहकी सेनाको जीतनेका उपाय मैंने प्राप्त कर लिया है।

अर्हन्त भगवानका आत्मा और स्वयंका आत्मा निश्चयसे समान है। स्वयंकी वर्तमान अवस्था हीन अवस्थाकी बात यहाँ गौण है। अर्हन्त भगवानको मिथ्यात्व, राग-द्वेषका सर्वथा

श्री सीमंधर जिन-स्तुति	सीमंधर जिनदेव, नगर पुंडरगिरि सोहे, वंदहि सुर-नर-इन्द्र, देखि त्रिभुवन मन मोहे;	विदेहक्षेत्रस्थ जिन-विंशतिका

नाश हो गया है इसलिये उनका स्वरूप स्पष्ट है। अर्हन्तके स्वरूपको मुमुक्षु जीव प्रथम मन द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानता है पश्चात् अपने आत्माको द्रव्य, गुण, पर्याय द्वारा मनसे जान लेते है कि यह चित्तशुद्धि है। यह सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्वका व्यवहार है। इतनी बात न जाने उसमें धर्म प्राप्तिकी योग्यता नहीं है। जैसे हीरेका हार पाँच रुपयेमें मिलता नही है लेकिन पाँच लाखकी किमत देनेसे मिलता है, वैसे चैतन्य हीरेको प्राप्त करनेके लिये स्वयंमें योग्य पुरुषार्थ करना चाहिये, अल्प पुरुषार्थसे कार्य नहीं होगा।

अर्हन्तके स्वरूपको जानते स्वयंके आत्मस्वरूपको जानता है। अर्हन्तके स्वरूपको जानते नव तत्त्व आदिका यथार्थ ज्ञान होता है।

१) जीवको जीव-ज्ञानस्वरूप–जाने लेकिन जीव अन्यका कार्य करे ऐसा न माने।

२) अजीवको अजीवस्वरूप जाने लेकिन अजीव जीवको लाभ करे ऐसा माने नहीं।

३) पुण्यको पुण्य जाने लेकिन पुण्य करते-करते धर्म होगा ऐसा माने नहीं।

४) पापको पाप जाने लेकिन पापको सुखका कारण माने नहीं।

५-६) पुण्य-पाप दोनों आस्रव और बंध है ऐसा जाने लेकिन पुण्यास्रव ठीक है, पापास्रव अठीक है–ऐसा आस्रवमें भेद करता नहीं है।

७) स्वभाव सन्मुख होना और अशुद्धिका रुकना उसे संवर माने लेकिन बाह्य शरीरकी क्रियासे संवर माने नहीं।

८) स्वभावमें आंशिक शुद्धिकी वृद्धि और आंशिक अशुद्धिका टलना उसे निर्जरा माने लेकिन बाह्य पदार्थोंके त्यागसे निर्जरा माने नहीं।

९) स्वभावमें परिपूर्ण शुद्धि होना उसे मोक्ष माने लेकिन शरीरका त्याग हुआ अतः मोक्ष हुआ ऐसा मानता नहि।

इस प्रकार नव तत्त्वोंको पृथक्-पृथक् स्वतंत्र जानता है, तथा चार निक्षेपोंका भी यथार्थ ज्ञान होता है।

१) अन्य पदार्थोंसे पृथक् करना संज्ञा देकर पदार्थोंको पहिचानना उसका नाम निक्षेप है।

२) भगवानकी मूर्तिमें स्थापना करके मूर्तिको भगवान कहना वह स्थापना निक्षेप है।

३) भविष्य या भूतकालकी योग्यतासे वर्तमान पदार्थको पहिचानना वह द्रव्य निक्षेप है।

४) वर्तमानकालकी योग्यतासे पदार्थको पहिचानना वह भाव निक्षेप है।

वृछ-लच्छन प्रभु चरन सरन, सबहीको राखहिं,
तरहु तरहु संसार सत्य, सत यहै जु भाखहिं;

नाम निक्षेप वह स्थापना आदि निक्षेप नहीं है, स्थापना वह अन्य निक्षेपरूप नहीं है—ऐसे प्रत्येक प्रत्येक निक्षेप स्वतंत्र यथायोग्य जानता है।

ऐसे द्रव्य, गुण, पर्यायका, निक्षेपका, नव तत्त्वका पृथक् पृथक् यथार्थ स्वरूप कहनेवालेको सर्वथा राग-द्वेषका नाश हुआ है। वह ही यथार्थ देव है। ऐसे यथार्थ स्वरूपको कहनेवाले वह यथार्थ गुरु है, और ऐसा ही यथार्थ स्वरूप बतानेवाले यथार्थ शास्त्र हैं। ऐसे यथार्थ देव-गुरु-शास्त्रका भी यथार्थ जानपना होता है। जीवोंको बाह्यत्यागकी महिमा आती है। लेकिन अंतर झुकाव स्वभाव सन्मुख होकर, स्वके ओरकी रुचि करके, परके ओरकी गृद्धि छोड़कर मिथ्यात्व मंद करता है वह दशा त्याग, वैराग्य है उसकी महिमा आती नहीं है।

तीव्र अज्ञानदशामें नव तत्त्वोंको पृथक्-पृथक् न जानते दो तत्त्वोंको एक करता हुआ वह अब पृथक्-पृथक् जैसे है वैसे जानता है अर्थात् उतने अज्ञानका त्याग किया है। प्रथम नय, निक्षेप, प्रमाणका अज्ञान था और सत् देव-गुरु-शास्त्रके स्वरूपका अज्ञान था, उस अज्ञानको टाल दिया और विकल्प द्वारा ज्ञान किया उतना अज्ञानका त्याग किया है।

स्थूल अज्ञानदशामें विरुद्धज्ञान और विरुद्धज्ञानको कहनेवाले कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रकी ओर रुचि होती थी वह रुचि पलटकर यथार्थ तत्त्वको कहनेवाले सत् देव, गुरु, शास्त्रकी ओर झुका वह ही विरुद्धज्ञानका त्याग और विरुद्ध रागका त्याग है। स्थूल अज्ञानदशामें शरीर तथा परका कर सकता हूँ—ऐसी मान्यतासे वीर्य परमें अटकता था और खंडित होता था लेकिन व्यवहार सत्यज्ञान होने पर स्वके विकल्पसे जाननेमें वीर्य ठहरा-एकाग्र हुआ उतना विपरीत पुरुषार्थका त्याग है।

यह व्यवहार है, विकल्पात्मकदशा है, उसमें अधिक वीर्य चाहिये तदपि वह, सम्यग्दर्शन या धर्म नहीं है, विकल्पका अभाव होगा तब सम्यग्दर्शन होगा, लेकिन जिस जीवको नव तत्त्व आदिमें अज्ञान वर्तता है उसे व्यवहारके धर्मप्राप्तिकी योग्यतामें अथवा चित्तशुद्धिका भी ठिकाना नहीं है। उपरोक्त अनुसार स्वयंके त्रिकाली आत्माको मनसे यथार्थ जान लेनेके पश्चात् आत्माका अनुभव कैसे करना उसे कहते है।

पृथक् पृथक् मोती और सफेदाईको हारमें अंतर्गत करके केवल हारको जानता है। झूलते हारमें मोती और सफेदाई पृथक् नहीं है लेकिन हार लेते समय मोती और सफेदाईके विकल्प द्वारा पृथक् करता हुआ वह विकल्पका अभाव करके मात्र हार पहिननेका सुखका

श्रेयांसरायकुल-ऊद्धरन, वर्तमान जगदीश जिन,
समभाव सहित भविजन नमहिं, चरण चारु संदेह विन।१।

अनुभव करता है—इस कथनको मोती और सफेदाईको हारमें अंतर्गत किया—ऐसा कहा जाता है।

उसी प्रकार आत्माकी पर्यायोंको और चैतन्यगुणोंको केवल आत्मामें ही अंतर्गर्भित करके आत्माको जानता है तब आत्मा स्वयं परिणामी, परिणाम हुए वह परिणाम, और एक परिणाम पश्चात् अन्य परिणामका होना वह परिणति—ऐसे तीन भेदोंका नाश करके जीव स्वयंके ज्ञानप्रमाण आत्माका अनुभव करते है। यहाँ पर्यायों तथा गुणको द्रव्यमें अंतर्गत करनेका कहा है तो पर्यायोंको किस प्रकार अंतर्गत करना ? विकल्पवाली पर्यायको किस प्रकार अंतरकी ओर झुकाना ? नवीन पर्याय हो उसे किस ओर झुकाना ? सम्यग्दर्शन होने पर निर्मल पर्याय होती है वह तो स्वभावमेंसे आयी है उसे कैसे समाहित करे ?

समाधान : विकल्प द्वारा यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्यायें हैं—इस प्रकार वह अपनेमें भेद करता था। वस्तुमें द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन भेद अथवा टुकड़ें नहीं हैं, तीनों अंतर्गर्भित ही है, लेकिन राग द्वारा यदि जिस भेदका विचार करता हो, लक्षमें पृथक्-पृथक् तीन स्वरूपसे देखता था लेकिन अंतर स्वभावमें एकाग्र होने पर निर्मल पर्याय प्रकट होती है वह द्रव्यके साथ अभेद ही है। विकल्पवाली पर्याय प्रगट हुई वह दूसरे समय तो व्यय हो जाती है, उसे मिलानेका रहता नहीं है, लेकिन स्वरूपमें अभेद होने पर वह पर्याय स्वभावकी ओर मोड़ना–मिलाना नहीं लेकिन वह प्रकट हुआ उस समय द्रव्यके साथ अभेद ही है। उसे द्रव्यमें समाहित कर दिया–ऐसा कथन करनेमें आता है। पर्यायका क्रम करता नहीं है लेकिन झुकाव जो रागमें था वह झुकाव पलट जाता है। दृष्टि बदल कर द्रव्यदृष्टि हुई वह अंतर अनुभव हुआ।

मोटरगाडीमें बैठकर कोई सम्बन्धी आये तो कौनसे सम्बन्धी आये वह देखता है लेकिन कौनसे वाहन और किसकी वाहनमें आये वह देखता नहीं है। वैसे आचार्य भगवानको कहनेका भाव क्या है उस भावको यथार्थ ज्ञानमें पकड़ना चाहिये। व्यवहारकी भाषाके कथनके सामने देखनेका नहीं है। वस्तुस्थितिका ख्याल करे तो भाषा निमित्त कहा जाता है।

वासनाको अंतर्धान करनेका शास्त्रमें लिखा है तो क्या वासना भीतरमें जाती होगी ? यह तो निमित्तका कथन है। प्रथम तो स्वयं रागमिश्रित विचारसे आत्माकी ओर देखता था वह अब निर्विकल्परूपसे आत्माकी ओर झुका उसे विकल्पका आश्रय छूट गया–वह पर्यायमें अंतर्लीन हुआ–ऐसा कहनेमें आता है। पर्याय तो एकके पश्चात् एक चालु ही है। उसमें कौनसी पर्यायको घुमाकर वापिस लाये या समाहित करे ? प्रथम दर्शन, ज्ञान, चारित्र

(शेष देखे पृष्ठ २१ पर)

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं. ४४-४५ (गाथा-४०)

यह ३९ गाथामें धर्मीके लक्षण बताये है कि धर्मीको सारा जगत इन्द्रजाल समान लगता है, एक निजात्म अनुभवमें ही रुचि है इसलिये उसके हेतु प्रयत्न करता है, परसे उदास है फिर भी परमें विकल्प जाता है तो पश्चात्ताप करता है। धर्मीके इस लक्षण अतिरिक्त अन्य लक्षणों अब ४०वीं गाथामें मुनिराज कहते हैं।

इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किंचिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतं॥४०॥

चाहे गुप्त निवासने, निर्जन वनमां जाय,
कार्यवश जो कंई कहे, तुर्त ज भूली जाय. ४०.

यह छोटे बालकोंको भी समझने जैसी बात है। बालक भी भगवान है। बालकपना वह तो जड़ शरीर माटी है। बालक, वृद्ध, स्त्री, नपुंसक आदि सभी सच्चिदानंद परमात्मा है। किसीके आत्मामें कोई अंतर नहीं है। आत्माकी पहिचान और श्रद्धा करके एकांतमें उसमें एकाग्र होनेका अभ्यास करना वह एक ही इस मनुष्यभवमें करने योग्य कार्य है।

निर्जनताकी इच्छावाला योगी एकांतवासकी इच्छा करता है। निर्जनता अर्थात् जहाँ मनुष्य या पशुकी आवाज भी न हो ऐसे एकांतस्थानमें धर्मी अंतर ज्ञानानंद स्वरूपमें एकाग्र होनेका प्रयत्न करता है और उसमें किसी कार्यवश कोई विकल्प आये और बोले तो भी उसे तुरंत भूल जाता है। स्त्री, पुत्र, धन आदिका लोभी स्वार्थवश मंत्र-तंत्रादि प्रयोग करने दौड़े न आये इसके लिये योगी ऐसा एकांतवास पसंद करते है कि जहाँ कोई भी मनुष्य आये नहीं और अपने हितका कार्य शांतिपूर्वक हो।

संतोंकी जगतसे अलग चाल

आत्माको हितकारी ऐसा इष्ट उपदेश चल रहा है। जिसको स्वयंका हित करना है उसे प्रथम क्या करना ?—कि स्वयंके अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप आत्माको पहिचानना और

श्री युगमंधर जिन-स्तुति	केवल-कलपवृच्छ पूरत है मन-इच्छ, प्रतच्छ जिनंद जुगमंधर जुहारिये;

परद्रव्य तथा परभावकी उपेक्षा करना।

प्रथम आत्माका श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव कर लेनेके पश्चात् धर्मीकी दशा कैसी होती है उसकी विशेष बात इस गाथामें कहते है।

निर्जनताकी चाहवाले योगी–धर्मी एकांतवासकी इच्छा करते है और निज कार्यवश कुछ कहे लेकिन उसे तुरन्त भूल जाते है।

जिसे एक स्वयंके आत्मानुभवकी रुचि लगी है ऐसे जघन्य सम्यग्दृष्टिको भी ऐसी भावना रहती है के मैं जैसे बने वैसे उस प्रवृत्तिसे दूर रहूँ। धर्मात्मा स्वयंके आत्मानुभवके प्रयत्न हेतु ऐसा एकांतस्थान पसंद करते है कि जहाँ लोग उनसे मंत्र–तंत्र आदि चमत्कारके प्रश्न पूछने न आये।

लोग तो अपने मतलबके लिये पुत्र प्राप्ति हेतु, कोई धन प्राप्ति हेतु, कीर्तिके लिये, अलाभ से बचने हेतु अनेक प्रकारके प्रश्न पूछना कि मंत्र–तंत्रादि हेतु धर्मात्माके पास आते है, वे न आये और स्वयं एकांतमें अपना ध्यान कर सके इसलिये धर्मात्मा–योगी स्वभावसे ही जनशून्य ऐसे पहाड़ोंकी गुफा, कंदरा (वृक्षकी बखोल) आदिमें अकेले अथवा गुरुके संगमें रहना चाहते है।

ध्यान करनेसे योगीको लोगोंको चमत्कार लगे ऐसे अतिशय प्रकट हो जाते है लेकिन योगी उसमें अपना हित मानते नहीं है। लोगोंको उपदेश देनेसे मेरा हित होगा या निर्जरा होगी ऐसा भी धर्मी मानते नहीं है क्योंकि उपदेशमें वाणी है वह तो जड है और उपदेश देनेका विकल्प है वह शुभभाव है। उससे स्वयंका हित होता नहीं है, मात्र पुण्यबंध होता है। तदपि उपदेश देनेका विकल्प आ जाय यह पृथक् बात है, उसमें लाभ मानकर धर्मी उसमें रुकते नहीं है।

धर्मी ऐसा उपदेश करते है कि हे जीवों ! आप अतीन्द्रिय आनंद और ज्ञानस्वरूप प्रभु हो उसकी सन्मुखता कीजिये और विभावसे विमुखता करें ! स्वयंको विकल्प आ जाय ऐसा उपदेश देते है लेकिन स्वयंके ध्यानमें एकाग्रता करनेसे कोई अतिशय उत्पन्न हुआ हो तो किसीको बताते नहीं अथवा कोई पूछे तो कहते भी नहीं है।

दुदुंभि सुद्धार बाजै, सुनत मिथ्यात्व भाजै,
विराजै जगमें जिनकीरति निहारिये।

स्वयंके स्वभावमें एकाग्रता करनेसे आत्मामें जो शांति प्रकट होती है उसके पास धर्मीको चमत्कार या अतिशयोंकी कोई किमत नहीं है।

श्रोता : ज्ञानी दुनियामें धर्मकी प्रभावना हो इसके लिये उपदेश देते है या नहीं ?

समाधान : प्रभावना किसको कहना ? स्वयंके शुद्ध आनंदकंद चैतन्यधाममें लीनता करना वह ही वास्तविक प्रभावना है। प्रभावनाका कथन दो प्रकारसे होता है। निश्चय प्रभावना और व्यवहार प्रभावना, लेकिन उसमें सत्य प्रभावना तो स्वरूपमें लीनता करना वह ही है, जिससे अन्य जीवोंको उपदेश देनेका भाव हो वह व्यवहार प्रभावना है, उससे तो बंध होता है और अन्य जीव उसके उपदेशके निमित्तसे समझते है तो वह अपने उपादानसे समझते है इसलिये स्वयंको तो शुद्ध चिदानंदमूर्ति भगवान आत्मामें जितनी एकाग्रता हो उतना ही लाभ है उसके अतिरिक्त तीर्थंकर प्रकृतिका बंध जिस भावसे हो वह भाव भी लाभदायक नहीं है। उस भावका कर्ता आत्मा नहीं है तो उपदेशका–वाणीका कर्ता आत्मा किस प्रकार होगा ?

मुनिको अपने शरीरके लिये अवश्य करनेयोग्य जो भोजनसामग्री है उस विषयमें श्रावकके साथ बोलना पड़े तो बोलते है, लेकिन उसी क्षण भूल जाते है। मुनिके लिये बनाया हुआ आहार हो तो मुनि लेते नहीं है। अमुक प्रकारकी विधि हो तभी मुनि आहार लेते है ऐसा श्रावकोंको कहना पड़े तो कहते है लेकिन पश्चात् तुरन्त भूल जाते है।

धर्मात्मा यथार्थ स्वार्थी है कि जिसे एक स्व हेतु अर्थात् कि अपना प्रयोजन एक वीतरागता है उसकी साधना जिसमें हो उसमें ही वे लाभ मानते है और वीतरागताकी वृद्धि हो ऐसा ही कार्य करते है। लाख बातकी एक बात कि मुनिको एक वीतरागताका ही प्रयोजन है। इसलिये वीतरागता अतिरिक्त सभी बातें मुनि तुरन्त भूल जाते है।

पंच महाव्रतादिके विकल्प या उपदेश देनेका शुभ विकल्प मुनिको आ जाय लेकिन उसमें कर्ताबुद्धि या लाभबुद्धि नहीं है इसलिये विकल्पमें मुनि रुकते नहीं है। जो बंधभाव है उसे मुनि रखना चाहते नहीं है इसलिये तुरन्त भूल जाते है। अहाहा ! ऐसा मार्ग है भाई ! अन्य मार्ग और इस मार्गमें पूरव–पश्चिम जितना अंतर है। (क्रमशः) ✻

तिहुंलोक ध्यान धरै नाम लिये पाप हरै,
करै सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये;

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

स्वमें उपयोगके समय अबुद्धिपूर्वक विकल्प होने पर भी निर्विकल्पपना कैसे कहा ? अनुभवकी अचिंत्य महिमा, और इसके लिये प्रेरणा

प्रश्न :–यदि निर्विकल्प अनुभवमें कोई विकल्प नहीं है तो शुक्लध्यानका प्रथम भेद जो पृथक्त्व-वितर्क-वीचार कहा है उसमें पृथक्त्व-वितर्क-वीचार अर्थात् अनेक प्रकारके श्रुत और वीचार; अथवा अर्थ-व्यंजन व योगका संक्रमण–ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर :–कथन दो प्रकारसे है—एक स्थूलरूप है, दूसरा सूक्ष्मरूप है। जैसे स्थूलतासे तो छठवें ही गुणस्थानमें सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत कहा, और सूक्ष्मतासे नवमें गुणस्थान तक मैथुनसंज्ञा कही; वैसे यहां अनुभवमें निर्विकल्पता स्थूलरूपसे कहते हैं, परन्तु सूक्ष्मरूपसे पृथक्त्व-वितर्क-वीचार आदिक भेदोंमें अथवा दशवें गुणस्थान तक कषायादिक कहे हैं। जो अपनेको व अन्यको जाननेमें आवें ऐसे भावका कथन स्थूल जानना; और जिसको आप भी न जाने, केवली भगवान ही जाने ऐसे भावोंका कथन सूक्ष्म जानना। इनमेंसे, चरणानुयोग आदिमें स्थूल कथनकी मुख्यता है और करणानुयोग आदिमें सूक्ष्मकथनकी मुख्यता है। ऐसा भेद अन्यत्र भी जानना।

इस प्रकार निर्विकल्प अनुभवका स्वरूप जानना।

उपयोग जब स्वानुभवमें लगे तब निर्विकल्पदशा कहलाती है, क्योंकि उस वक्त उपयोग विकल्पकी तरह नहीं है, उपयोग निजस्वरूपमें एकाग्र हुआ है। यद्यपि निर्विकल्प अनुभवके समयमें भी सरागी जीवके अबुद्धिपूर्वक विकल्प विद्यमान तो है, रागका कार्य जो विकल्प है वह विद्यमान है, परन्तु उपयोग उसमें नहीं है, और वह इतना सूक्ष्म है कि अपनेको या दूसरे स्थूलज्ञानीको वह ख्यालमें नहीं आ सकता, सामान्य छद्मस्थके ख्यालमें आये ऐसा स्थूल विकल्प वहाँ नहीं है, अतः स्थूल कथनमें वहाँ निर्विकल्पता ही कहनेमें आती है। वहाँ पर जो सूक्ष्म कषाय या विकल्प विद्यमान है वह अबुद्धिपूर्वक है और वह सर्वज्ञके अथवा अवधि–मनःपर्ययज्ञानीके ही गम्य है। मतिज्ञानी-श्रुतज्ञानी आगमसे या

भूपति सुदृढराय विजया सु तेरी माय,
पय गज लच्छन जिनेशको निहारिये।२।

अनुमानसे उसकी विद्यमानताका निर्णय कर सकता है परन्तु साक्षात् नहीं जान सकता। करणानुयोगके सूक्ष्म कथनकी अपेक्षासे तो दशवें गुणस्थान तक कषाय अंशका या विकल्पका सद्भाव कहा है, परन्तु वह सामान्य जीवोंके गम्य नहीं होनेसे इसका कथन सूक्ष्मकथनमें किया, और सामान्यतया वहाँ निर्विकल्पता कह दी। वैसे ही पृथक्त्व-वितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्लध्यान आठवेंसे बारहवें गुणस्थान तक होता है उसमें सूक्ष्मरूपसे अपने द्रव्य-गुण-पर्याय आदिमें योगका संक्रमण होता है; दसवें तक सूक्ष्मरूपसे रागका विकल्प भी होता है; परन्तु–एक तो वह सामान्य जीवोंके गम्य नहीं और दूसरे वहाँ स्वानुभवकी ही मुख्यता है, अतः अबुद्धिपूर्वकके सूक्ष्म विकल्पको गौण करके वहाँ निर्विकल्पपना कहा है। इस प्रकार मुख्य-गौण करके कहनेकी शास्त्रकी पद्धति है। एक-एक समयके सूक्ष्म परिणामका कथन करने जाँय तब तो शास्त्रका पार ही न आवे और जीवोंकी बुद्धिमें भी वह न आवे और जीवोंकी बुद्धिमें भी वह न आ सके, अतः अपने हित-अहित सम्बन्धी ज्ञान करके जीव अपना प्रयोजन साध सके–ऐसी शैलीसे शास्त्रोंने १४ गुणस्थान आदिका कथन किया है। अत्यन्त सूक्ष्मतासे तो प्रत्येक गुणस्थानमें भी परिणामोंके असंख्य प्रकार होते हैं। इसलिये प्रकरणके अनुसार कहीं स्थूल कथन होता है कहीं सूक्ष्मकथन होता है। स्वानुभवको निर्विकल्प कहा वह स्थूल कथन है; और जब सूक्ष्मपरिणाम दिखाना हो तब वहाँ जो सूक्ष्मपरिणाम कषायादि हो उसका भी कथन करते हैं। यहाँ इतना विशेष समझना कि पृथक्त्व-वितर्क-वीचार आदिमें स्वानुभवके समय जो वितर्क-वीचार कहा है वह स्वमें ही स्वमें है, किन्तु स्वमेंसे उपयोग छूटकर बाहर परकी ओर जाय–ऐसा स्थूल संक्रमण वहाँ नहीं है। स्वानुभवके समयमें उपयोग तो स्वज्ञेयमें ही लगा है; परन्तु जबतक वीतरागभाव पूर्ण नहीं हुआ और कषायका सूक्ष्म अंश भी विद्यमान है तबतक परिणाममें इतनी चंचलता रहती है। तथा ११-१२वें गुणस्थानमें राग न होनेपर भी अभी श्रुतउपयोगमें इतनी चंचलता है।

चरणानुयोगमें सामान्यतया ऐसा कहलाता है कि मुनि सर्वथा अपरिग्रही है; परन्तु करणानुयोग अंदरके सूक्ष्म परिणाम दर्शाते हुए दशवें गुणस्थान तक परिग्रहकी (अंदरके सूक्ष्मलोभकी) विद्यमानता कहता है; ऐसे विवक्षाके अनुसार दोनों कथन सच्चे हैं, इनमें कोई विरोध नहीं। ऊपरके गुणस्थानमें जो सूक्ष्म लोभादि परिणाम है उसका कार्य बाहरमें स्थूलरूपसे

श्री बाहु जिन-स्तुति	प्रभु बाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगमें जिनकी, मृगचिन्ह विराजत जासु धुजा, नगरी है सुसीमा भली जिनकी,

नहीं दिखता– बाहरमें वस्त्रादिक ग्रहण नहीं होता इसलिये स्थूल विवेचनमें इसका अभाव गिनकर मुनिको निष्परिग्रही कहा। और सूक्ष्म करणानुयोगमें भूमिकाके अनुसार जो-जो परिणाम वर्तता है उसका ज्ञान भी कराया। सूक्ष्म परिणामकी अपेक्षासे नववें गुणस्थानमें भी वेदका उदय कहा, अतः वहाँ तक मैथुनसंज्ञाका सद्भाव कहा, परन्तु मुनिको स्थूल प्रवृत्तिमें या बुद्धिपूर्वकके स्थूलपरिणाममें इसका अभाव ही है अतः छट्ठे गुणस्थानमें भी सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत कहा। द्रव्यानुयोग ऐसा कहता है कि सम्यग्दृष्टि जीव अबन्ध है—क्योंकि शुद्ध अबन्ध स्वभावको दृष्टिमें लिया है; और करणानुयोग ऐसा कहता है कि सम्यग्दृष्टिके (चतुर्थ गुणस्थानमें) ७७ कर्मप्रकृतियोंका बन्धन होता है। इन दोनों प्रकारका ज्ञान करना चाहिये। सम्यग्दृष्टिके अबन्ध कहनेमें उसकी शुद्धदृष्टिका स्वरूप समझाना है, उसकी दृष्टिमें-प्रतीतिमें कैसा अबन्ध शुद्धआत्मा आया है–यह दिखाना है, और जिस रागसे कर्मप्रकृतियाँ बन्धती हैं उस रागको भी शुद्धस्वभावके साथ एक नहीं करते, तथा शुद्धदृष्टि बन्धका कारण नहीं होती; अतः सम्यग्दृष्टिको द्रव्यानुयोगमें अबंध कहा। और भूमिकाके अनुसार पर्यायमें जितने रागादि हैं व जितनी कर्मप्रकृति बंधती है उसका भी अस्तित्व करणानुयोगमें दिखाया। उसीतरह यहां स्वानुभवमें भी सूक्ष्मरूपसे अबुद्धिपूर्वक विकल्प विद्यमान होने पर भी, उपयोग निजस्वरूपमें ही लगा है और बुद्धिपूर्वकके कोई विकल्प नहीं हैं अतः निर्विकल्पपना कहा–ऐसा समझना।

इसप्रकार निर्विकल्प अनुभवका स्वरूप अनेक तरहसे स्पष्ट किया, और यह भी खास करके दिखाया कि सम्यग्दृष्टिके चतुर्थ गुणस्थानमें भी होता है। ऐसे सम्यक्त्वकी व स्वानुभवकी अलौकिक चर्चा की। देखो, साधर्मी लोग एक दूसरेसे सम्यग्दर्शनकी व स्वानुभवकी कितनी सरस चर्चा करते हैं–यह इस पत्रमें झलक रहा है। एक दूसरेके संगमें रहनेवाले धर्मात्मा अनुभवकी अलौकिक चर्चा करते रहते हैं। जैसे दो व्यापारी मिलें तब व्यापारकी या भाव-तावकी चर्चा करते हैं, दो चोर इकट्ठे होने पर चोरीकी चर्चा करते हैं, और दो धर्मात्मा इकट्ठे होते हैं तब स्वानुभवकी बात करते हैं। जिसको जो बात प्रिय लगे उसकी ही वह चर्चा करता है।

यह सम्यक्त्वकी व स्वानुभवकी बहुत अच्छी बात है...जिसके लक्षगत करनेसे जन्म-मरण मिट जाय–ऐसी यह अलौकिक बात है। यह स्वानुभव-कला ही संसार समुद्रसे तिरनेकी कला है, अन्य सब पढ़ाई चाहे आती हो, चाहे न आती हो। इस स्वानुभव-कलाको

शुभ केवलज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु है सबकी जिनकी,
गनधार कहै भवि जीव सुनो, तिहुं लोकमें कीरति है जिनकी।३।

नहीं जाननेवाला अन्य अनेक कलाएँ जानता हो तो भी संसारसमुद्रसे तिर नहीं सकता, मोक्षके लिये उसकी एक भी कला काममें नहीं आती। और स्वानुभवकी एक कलाको जाननेवाला अन्य कलाएँ कदाचित् न भी जानता हो तो भी स्वानुभवके बलसे वह संसारको तिर जायगा और मोक्षको साधेगा। स्वानुभवके बलसे उसे केवलज्ञानकी ऐसी महाविद्या खिलेगी कि इसमें जगतकी सभी विद्याओंका ज्ञान समा जायगा। अरे, आयु छोड़ो, बुद्धि अल्प और श्रुतका तो पार नहीं, इसमें हे जीव ! तुझे वही सीखना योग्य है कि जिससे भवसमुद्र तिरा जाय। दूसरी निष्प्रयोजन बातोंको छोड़कर मूल प्रयोजनभूत इस बातको जान कि जिसके जाननेसे आत्मा इस संसारसमुद्रको तिर जाय। इसके सम्बन्धमें दृष्टांत : कोई विद्वान नौकामें बैठकर जा रहे थे; बीचमें नाविकसे बातचीत करते हुए उनने पूछा–कि–हे नाविक ! तुम्हें संगीत आता है ? नाविकने कहा–'ना भाई !' थोड़ी देर बाद पूछा–अजी ! संस्कृत-व्याकरण आता है ?–ज्योतिष आता है ?–गणित आता है ? नाविकने कहा–'नहीं जी, ये कुछ नहीं आते।' अन्तमें शास्त्रीजीने पूछा–भैया ! कमसे कम लिखना-पढ़ना तो आता ही होगा ? नाविकने कहा–'नहीं जी ! हमारे तो यह बस नदी भली और हमारी नैया भली.... हम तो सिर्फ यह जानते हैं कि पानीमें कैसे तिरना !'

तब पंडितजी बोले–बस ! तब तो नाविक भाई ! तुम्हारी जिंदगानी पानीमें ही गयी। हम तो न्याय-कानून-संस्कृत-व्याकरण-संगीत-गणित-ज्योतिष आदि सब जानते हैं। नाविकने कहा–बहुत अच्छी बात, भैया ! हमारे इनसे क्या ? हमें तो हमारी नौकासे काम ! अभी यह बात चल रही थी कि इतनेमें तेज पवन चलने लगी और नौका डाँवाडोल होकर पानीमें बहने लगी तब डूब जानेकी स्थिति उपस्थित हो गई; तब नाविकने पूछा– क्यों शास्त्रीजी महाराज ! आपको तैरना आता है कि नहीं ? शास्त्रीजी तो घबरा गये और कहा– 'नहीं भाई ! मुझे और सब आता है, मात्र एक तैरना नहीं आता।' नाविकने कहा–आप सब कुछ सीखे किन्तु तैरना नहीं सीखे; यह नौका तो अभी डूब जायगी, मैं तो तैरना जानता हूँ अतः मैं तो तैरकर उस पार पहुँच जाऊँगा; किन्तु आप तो इस नौकाके साथ अभी डूब जाओगे, अतः आप और साथमें आपकी सब विद्याएँ पानीमें डूब जायेगी।–यह तो एक दृष्टांत है। वैसे जिसको भवसमुद्रसे तिरना हो उसे स्वानुभवकी विद्या सीखना चाहिये। अन्य अप्रयोजनभूत जानपना बहुत करे किन्तु अंतरमें स्वभावभूत चैतन्यवस्तु क्या है इसको यदि लक्षगत न करे तो बाहरी जानपना उसे (उपरोक्त विद्वानकी तरह) संसारसे तिरनेके लिये उपयोगी नहीं होगा। और जिसने बाहरकी महिमा छोड़के अंतरमें चैतन्यविद्याको साधा है उसे

(शेष देखे पृष्ठ १८ पर)

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❊ समाधि-वर्णन ❊

मैं ज्ञायक आनन्दमूर्ति हूँ। उसकी दृष्टि हुई इसलिए मैं शिवपदरूप हूँ। आत्मा आनन्दरससे भरपूर है उसका अनुभव हुआ। स्वरूपमें प्रमोद होनेसे शुद्धि बढ़ती है—ऐसा कहा है, परन्तु व्यवहार करते–करते शुद्धिमें वृद्धि होती है ऐसा नहीं कहा। आत्म–प्रमोदसे जितनी शक्ति बढ़ी उतनी शुद्धता बढ़ती है। आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, उसीकी अधिकता धर्मीको लगी है वह समाधि है। ग्रन्थोंमें भी ऐसी समाधि और धर्मका गुणगान किया है।

स्वरूपानन्द पदसमाधिसे होता है। अंतरमें राग–द्वेषको छोड़कर स्वरूपका ज्ञाता होकर समाधिको प्राप्त करता है। वस्तुका स्वरूप गुणसे ज्ञात होता है। वस्तु त्रैकालिक है, उसीप्रकार गुण भी त्रिकाल हैं, इसलिए ज्ञान वह आत्मा, आनन्द वह आत्मा,—इसप्रकार गुणोंसे जाना जाता है। विकल्पसे, परसे, निमित्तसे आत्मा ज्ञात नहीं होता। भगवान आत्मा अनन्तगुणोंका पिण्ड है, उसकी दृष्टि हुई वह सम्यग्दृष्टि है। अज्ञानी पैसेको–द्रव्यको–मानता है; उसकी दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति है, उसे भूलकर पुण्यसे धर्म मानता है वह जीवका घात करता है, उसे धर्म नहीं होता। अनन्त गुण अभेद हैं, ऐसी दृष्टि करना वह द्रव्यदृष्टि है। जैसे सोना एक वस्तु है, उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन आदि अभेद हैं। पीलापन अलग रहता है और चिकनापन अलग रहता है—ऐसा नहीं है, उसीप्रकार आत्मामें ज्ञान, दर्शन आदि अनन्तगुण अभेद हैं, परन्तु संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनकी अपेक्षासे भेद हैं, परन्तु प्रदेशभेद नहीं है, वस्तु अभेद है।

वितर्क अर्थात् द्रव्यशब्दके अर्थको भाना। भावश्रुतमें स्वरूपअनुभवकरण कहा, वितर्क श्रुत कहा जाता है। श्रुतज्ञानमें मैं शुद्ध हूँ—ऐसे शब्दका विकल्प उठता है वह द्रव्यश्रुत है, क्योंकि यहाँ गुण–गुणीभेदका विकल्प उठता है। द्रव्यश्रुत होता है परन्तु उसे

श्री सुबाहु जिन-स्तुति	श्री स्वामी सुबाहु भवोदधि तारन, पर ऊतारन निस्तरं, नगर अजोध्या जन्म लियो, जगमें जिन कीरति विस्तरं;

अनुभवका करण नहीं कहा है। बाह्यश्रुत तो निमित्त है, श्रुतज्ञानका विकल्प उठा उससे भी आत्माका अनुभव नहीं होता परन्तु उस विकल्पसे रहित शुद्ध चिदानन्दकी दृष्टि हुई, अंतर अवलम्बन हुआ वह भावश्रुत है, वह अनुभवका कारण है। भावश्रुतसे पूर्व द्रव्यश्रुत होता अवश्य है, उसे व्यवहारसे श्रुतज्ञान कहा जाता है।

ज्ञान वह आत्मा है—ऐसा विकल्प लक्ष्यमें लेता है, इसलिए उसे द्रव्यश्रुत कहा जाता है। भावश्रुत आत्माका अनुकरण करता है, निमित्त और रागका अनुकरण नहीं करता। यह बात समझनेमें कठिन लगती है। संसारमें रुचि हो उसे सांसारिक बात कठिन नहीं लगती, वैसे ही जिसे आत्माकी रुचि हो उसे यह बात कठिन नहीं लगती। निश्चयश्रुतज्ञानके बिना व्यवहार श्रुतज्ञान भी नहीं कहा जाता। ज्ञानकी पर्याय स्वज्ञेयमें अभेद हुई वह भावश्रुत है। ऐसी समाधि अमरपदका कारण है। लोग बातें करते हैं कि गिरनारकी गुफामें अनेकों योगी अमर हो गए हैं, मरते नहीं हैं, वे सब कल्पनाएँ हैं। ऐसे कोई अमर नहीं होते। अमरफल खानेसे भी अमरत्व प्राप्त हुआ हो—ऐसा भी नहीं है। हाँ, समाधिसे अमर हुआ जाता है।

''अब हम अमर भये, न मरेंगे।''

आत्माका विचार अनादि भवभावनाका नाश करता है। निजद्रव्य–गुण–पर्यायके विचारसे परके द्रव्य–गुण–पर्यायको भिन्न जानकर दर्शन–ज्ञानके नमूनेको पहिचानकर, चेतनमें मग्न होनेसे, सिद्धदशाकी शांतिका नमूना प्राप्त होता है। जैस अनाजका नमूना दे वैसा ही सारा माल होता है, वैसे ही आत्मामें ज्ञान–दर्शन भरे हैं, उसकी एक समयकी पर्यायमें नमूना–वानगी है, उसे देखने पर पूर्ण आत्मा कैसा है उसका निर्णय करता है।

अभी जिसे निमित्तसे भेदज्ञान करना नहीं आता हो उसे रागसे भेदज्ञान नहीं होता। आत्माके लक्षण द्वारा आत्माको परसे भिन्न जाने तो उसके द्वारा साररूप पदको प्राप्त करे और समाधि हो जाए तथा जिसकी अपार महिमा है ऐसे परमपदकी प्राप्ति हो।

अनादिसे पर–इन्द्रियजनित आनन्द मानता था वह मिट गया। आत्माके अतीन्द्रिय सुखकी प्रतीति होनेसे आकुलतारूप दुःखका नाश हुआ, ज्ञानानन्दमें समाधि हुई, वस्तुके वेदनसे आनन्द हुआ, गुणके वेदनसे आनन्द हुआ, परिणति विश्रामस्वरूपमें लीन हुई तब आनन्द हुआ। एकदेश स्वरूपानन्द ऐसा है। यह साधककी बात है। एकदेशस्वभावका आनन्द ऐसा है, इसलिए यह चौथे गुणस्थानकी बात है। यहाँ केवलीकी बात नहीं है। केवली पूर्ण दशा तो रागादिका सर्वथा नाश होने पर होती है, वहाँ पूर्णानन्द दशा होती है।

(क्रमशः) ✻

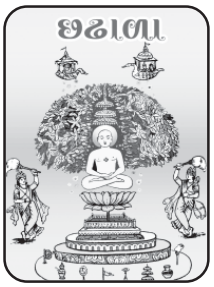

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा ४-५-६)

जीवतत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन

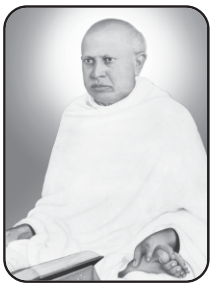

अब वीतरागविज्ञानको जाननेवाले अंतरात्मा कैसे हैं? समयसारमें तो कहते है कि अपनी ज्ञानचेतनाके अतिरिक्त अन्य किसी भी भावको किंचित्मात्र अपने मानता नहीं है, स्वयंको ज्ञानचेतनारूप ही सदा देखते है—अनुभव करते है, वे ज्ञानी अंतरात्मा है, और जीव स्वयं भेदज्ञान करके जब अंतरात्मा होता है तभी वह ऐसे अंतरात्माको पहिचान सकता है। स्वयंने अपने आत्माका स्वसंवेदन किये बिना मात्र अनुमान द्वारा अन्य ज्ञानी धर्मात्माको भी पहिचान सकते नहीं है। अर्थात् आत्मा–अनात्माका भेदज्ञान करके जीवको स्वयं अंतरात्मा होनेकी यह बात है। आत्माके स्वरूपको यथार्थ जाने वह अंतरात्मा है। आत्माका स्वरूप रागसे और देहसे भिन्न है। राग और देहका नाश होने पर भी आत्मा तो अपने चेतनस्वभावसे सदा जीवंत है, उसके किसी धर्मका नाश होता नहीं है। स्वयंके ऐसे आत्माका अनुभव करनेवाले अंतरात्मा वह तो परमात्माके पडोशी है; बहिरात्मापना छोड़कर उन्होंने परमात्माके साथ संधि की है, बहिरात्मापना छोड़कर, अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूपका ध्यान करते हुए जीव परमात्मा होता है, इसलिये पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं कि–

त्रिविध आत्मा जानकर, तज बहिरातमभाव;
बन जा तू अंतर आतमा, ध्या परमात्मस्वभाव।

अंतरात्मामें किसीको राग तो होता है (–सभीको नहीं होता क्योंकि बारहवें गुणस्थानमें भी अंतरात्मा है, वह तो वीतराग है,) इसप्रकार नीचली दशामें राग होने पर भी अंतरात्मा उससे भिन्न स्वयंके चेतनस्वरूपको जाननेवाले है, रागको मोक्षमार्ग मानते नहीं है। उसमें सातसे बारह गुणस्थान तकके उत्तम अंतरात्माएँ तो शुद्धोपयोग द्वारा स्वयंके निर्विकल्प आनंदका ही अनुभव कर रहे है, परमात्मदशा उनके अति नजदीक वर्तती है। शुद्धोपयोगी होकर अंतरमें चैतन्यगोलाका साक्षात् अनुभव कर रहे है। दूसरे अंतरात्माओंमें भी ऐसे आत्माका भान तो है उन्हें निर्विकल्पध्यान कभी कभी होता है।

निशढिल पिता सुनंदा जननी, मरकटलच्छन तिस तारं,
सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वंदना शशि तारं।४।

अरे ! अंतरात्माकी पहिचान अति सूक्ष्म है; उसे पहिचाने तो जीव–अजीवका भेदज्ञान हो जाय ऐसा है।

* देहादि बाह्यको आत्मा माने वह बहिरात्मा।

* परसे भिन्न अंतरमें आत्मस्वरूपके जाने वह अंतरात्मा।

* उत्कृष्ट-परम ज्ञानानंददशाको प्राप्त हुए वह परमात्मा।

आत्माकी ऐसी तीनदशाको पहिचानकर, बहिरात्मापना छोड़ना, और अंतरात्मा होकर परमात्मपदकी साधना करना। परमात्माकी पहिचान अंतरात्माको ही होती है, बहिरात्मा उसे पहिचान सकता नहीं। बहिरात्मा तो शरीरको ही देखता है।

शरीर और मैं पृथक् है–ऐसे शरीरसे भिन्नता भी उसे भासित नहीं होती और रागसे भिन्न होनेरूप वीतरागी मोक्षमार्गमें कहाँसे आयेंगे ? अंतरमें रागसे भी चेतनभाव पृथक् है ऐसा भान किये बिना मोक्षमार्ग होता नहीं है।

मोक्षमार्गमें वर्तते मुनिओंको भी शुद्धोपयोगी मुनिओंको उत्तम अंतरात्मा कहा और शुभोपयोगी मुनिओंको मध्यम अंतरात्मा है; अंतरमें आत्माका ज्ञान तो दोनोंको है; लेकिन जो निर्विकल्प अनुभवमें लीन है उसे उत्तम कहा; शुभरागवालेको उत्तम नहीं कहा। यदि वे है तो पंचपरमेष्ठीमें, इसलिये उत्तम है; 'साहु लोगुत्तमा उसमें आ जाते है; लेकिन शुद्धोपयोगकी अपेक्षा उन्हें मध्यम कहा। तदपि शुद्धात्माका जिसे भान नहीं है ऐसे अज्ञानीके शुभकी क्या बात ? शुभभावके समय भी वह तो बहिरात्मा है। और भेदज्ञानी जीवको अशुभभावके समय भी अंतरात्मा कहा है। परमात्माको तो शुभ–अशुभभाव होते ही नहीं है; अंतरात्माकी चेतना भी उस-उस समय शुभ–अशुभभावोंसे पृथक् अलिप्त ही वर्तती है।

अज्ञानी चाहे जितने शुभभाव करे, मात्र व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका पालन करे तो भी उसका स्थान जघन्य–अंतरात्मासे भी हीन है, अर्थात् कि वे तो बहिरात्मा है। जघन्य अंतरात्माका स्थान तो मोक्षमार्गमें है। लेकिन बहिरात्माका स्थान मोक्षमार्गमें नहीं है। निर्विकल्प अनुभूति सहित शुद्ध आत्माकी अंतर्दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं है और सम्यग्दर्शन बिना अंतरात्मपना होता नहीं। जघन्य अर्थात् छोटेसे छोटा अंतरात्मा भी अंतरमें

श्री सुजात जिन-स्तुति	अलिका जु नाम पावै इन्द्रकी पुरी कहावे, पुंडरगिरि सरभर नावे जो विख्यात है;

निश्चय श्रद्धा-ज्ञान सहित ही होता है। श्रद्धा-अपेक्षासे उसे जघन्यपना नहीं है, ज्ञान और चारित्र अपेक्षासे जघन्यपना है।

देखो, अंतरात्मा उत्तम हो, मध्यम हो, जघन्य हो, वे तीनों प्रकारकी अंतरात्माएँ मोक्षमार्गी है। (तीनों शिवमगचारी) चौथे गुणस्थानवाले जघन्य अंतरात्मा भी मोक्षमार्गी है, शिवमगचारी है, चौथे से बारहवें गुणस्थान तकके सभी अंतरात्माएँ मोक्षमार्गमें चलनेवाले है। निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ उसके प्रतापसे मोक्षमार्ग प्रारम्भ हो गया है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं ऐसे जीव व्रतादि करे और द्रव्यलिंग धारण करके फिर भी अंतरात्माके वर्गमें आते नहीं है, वे तो बहिरात्मा ही है। व्रतरहित ऐसे जीव मोक्षमार्गमें नहीं है। चाहे कोई पंचमहाव्रत पालन करता हो द्रव्यलिंगी साधु हो, तदपि वह मिथ्यादृष्टि ही है उसे चारित्रका लेशमात्र सद्भाव नहीं कहा और अव्रती होने पर भी सम्यग्दृष्टि धर्मात्माको चारित्रमोहकी चार प्रकृति (अनंतानुबंधी क्रोधादि) का तो अभाव हुआ है, जितने आंशिक चारित्रगुण खिला है। अहा ! सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अंतरकी दशा कोई अनेरी है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ १३ का शेष भाग) (अध्यात्म संदेश)

बाहरकी अन्य विद्याएँ कदाचित् थोड़ी हों तो भी (नाविककी तरह) स्वानुभवकी विद्याके द्वारा वह भवसमुद्रको तिर जायगा और तीनलोकमें सबसे श्रेष्ठ ऐसी केवलज्ञानविद्याका वह स्वामी हो जायगा।

रे जीव ! तुझे स्वानुभवकी कला सिखानेवाले और संसारसे तारनेवाले संत–धर्मात्मा मिले हैं, तो अब बाहरी कलाकी जानकारीका महत्व छोड़के स्वानुभवकलाकी महत्ताको समझ। भाई, इसके बिना संसारका कहीं अन्त नहीं। इस स्वानुभवके सामने दुनियाका अन्य सब पढ़ना-लिखना थोथा है। एक क्षणभरका स्वानुभव हजारों वर्षोंके शास्त्र-पठनसे भी ज्यादा बढ़कर है अतः तू इसको जान। धर्मीको आत्माके ज्ञानध्यानसे बहुत शुद्धता बढ़ती जाती है। और असंख्यात गुणी निर्जरा होती जाती है। बाहरी उघाड़ बढ़े चाहे न बढ़े किन्तु अंतरमें चैतन्यके अनुभवनेकी ज्ञानकी शक्ति तो उसे बढ़ती जाती है और आवरण एकदम टूटता जाता है, एक क्षणभरके स्वानुभवसे ज्ञानीको जितने कर्म टूटते हैं, अज्ञानीको लाखों उपाय करनेसे भी इतने कर्म नहीं टूटते। ऐसे सम्यक्त्वकी कोई अचिंत्य महिमा है।–ऐसा समझके हे जीव ! तू इसकी आराधनामें तत्पर हो। (क्रमशः) ✻

सहस्त्रकिरनधार तेजतैं, दिपै अपार;
धुजापै विराजै अंधकार हू रिझात है;

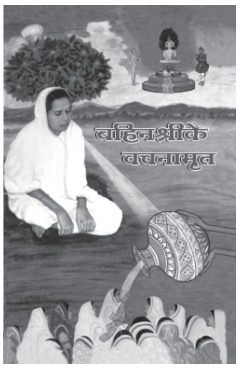

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृतों पर परम पूज्य सद्गुरुदेव श्रीकानजीस्वामीके प्रवचन

वचनामृत-१

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा ।। १ ।।

'हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा।

यहाँ, पहलेसे प्रारम्भ करते हैं। भाषा सादी है किन्तु मर्म बहुत है। यह वचनामृत-पुस्तक अनेक लोगोंको प्रिय हो गई है। वेदान्तवाले पढ़ें तो उन्हें भी अतिप्रिय लगती है। उन्हें भी ऐसा लगता है कि–'यह क्या ! सादी भाषा और बात अस्तिकी है।

पहला शब्द 'हे जीव !' वहाँसे लिया है। समयसारकी दूसरी गाथामें भी 'जीवो चरित्त-दंसण-णाणठिदो' और समयसारके परिशिष्टमें—४७ शक्तियोंमें—पहली जीवत्वशक्तिसे शुरूआत की है | हे जीव! तुं जीवत्व शक्तिसे जीवित रहनेवाला प्रभु है; अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य आदि अनंत शक्तियोंका पुंज भगवान आत्मा है। तुझे कहीं न रुचता हो—परमें, रागमें, एक समयकी पर्यायमें, क्योंकि पर्यायमें प्रगट आनन्द नहीं है—तो अपना उपयोग पलट दे, और आत्मामें रुचि लगा।

तेरी वर्तमान पर्याय–अवस्था–जो राग और शुभ-अशुभके–पुण्यपापके विकल्पोंमें रुकी है वहाँ उसे अच्छा नहीं लगेगा, क्योंकि वहाँ राग और दुःख है। वहाँसे अपना उपयोग पलट दे। वर्तमान दशामें जो राग है वह तो हो ही गया है, उसे कैसे पलटें ? उसके बादकी दशाको–उपयोगको अन्तर्मुख कर, ऐसा उसका अर्थ है। तुझे बाहर कहीं संतोष न लगता हो, आकुलता लगती हो, तो अपनी दशाके व्यापारको—अपने उपयोगको गुलाँट लगाकर भीतर स्वभावोन्मुख कर। जीव शुद्ध चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप प्रभु है, वहाँ उपयोगको ढाल—मोड़, और आत्मामें रुचि लगा।

देवसेन राजासुत जाकी छवि अद्भुत,
देवसेना मातु जाकै हरष न मात है;

'आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है, वहाँ अवश्य रुचेगा।'

—क्योंकि वहाँ आनन्द है और रागमें दुःख है। इसलिये उपयोगको पलटकर भीतर आत्मामें रुचि लगा। वहाँ तुझे अच्छा लगेगा। रुचि लगा तो अच्छा लगेगा; आत्मामें अच्छा लगे ऐसा है। अहाहा ! बड़ी सादी भाषा है ! बहिन बोलीं वह ब्रह्मचारी बहिनोंने लिख लिया, और हिम्मतभाईने उसे एकत्रित किया।

तेरी परोन्मुख वर्तमान दशा 'है', नहीं है ऐसा नहीं। वहाँ से पलटी मार; क्योंकि पर्याय है वह तो पलटेगी ही, ध्रुव हो वह नहीं पलटता। इसलिये परकी ओर—रागकी ओर—जो उपयोग है उसे इस ओर–आत्माकी ओर मोड़ दे। अहा ! कथन बिलकुल संक्षिप्त। 'व्यवहारसे होता है' और 'व्यवहारसे नहीं होता है'—यह सब विवाद उड़ गया। आत्मामें रुचे ऐसा है, क्योंकि आत्मामें आनन्द भरा है; तुझे रुचेगा; रुचि करेगा तो रुचेगा।

यहाँ दो बातें ली हैं : (१) कहीं न रुचता हो तो, (२) अपना उपयोग पलट दे। उपयोगको पलट यह पुरुषार्थसे कहा है। कैसे पलटे ? कर्म हटे तो पलटे ऐसा नहीं है। तू स्वयं ही उपयोगको परमें–रागमें–लगाता है वह तेरा ही अपराध है; उस उपयोगको तू ही अपने पुरुषार्थसे इसमें–आत्मामें–लगा दे, पलट दे। वहाँ आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे–अच्छा लगे ऐसा है, अन्यत्र कहीं–रागमें या व्यवहाररत्नत्रयमें–रुचे ऐसा नहीं है। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

अहा ! इस शास्त्रका क्या कहना ! बहुत ही सादी भाषा है। इसका तो प्रचार होना चाहिये; लोगों को सस्ते भावमें देना चाहिये; लोग पढ़ें तो सही। अहाहा ! बहिनकी अंतरंगदशाकी तो क्या बात कहें ! बहिनको तो अनेक स्थानों पर अभिनन्दन-पत्र दिये गये हैं—राजकोट, बम्बई, भावनगर, सुरेन्द्रनगर, वढवाण, लींबड़ी, बोटाद, कुंडला, उमराला, जामनगर, मद्रास आदि अनेक नगरोंमें बहिनका यह शास्त्र प्रकाशित हुआ है ! इसमें मात्र सिद्धान्तका मर्म भरा है ! जो समझना चाहे उसे समझनेमें एकदम सरल है।

आत्मामें आनन्द भरा है। आनन्दवाला है ऐसा नहीं, किन्तु स्वयं आनन्दस्वरूप ही है। वहाँ तुझे अवश्य रुचेगा ही। यह तो मंगलाचरण है, प्रारम्भ है।

'जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है।'

श्री सुजातस्वामीको प्रणाम नित्य भव्य करैं,
जाके नाम लिये कुल पातक विलात हैं।५।

आत्मामें आनन्द भरा है, वहाँ जरूर रुचेगा—अच्छा लगेगा, इसप्रकार पहले अस्तिसे कहा; और उसके बिना अन्यत्र कहीं—परके रागमें या दया-दानादिके भावमें—रुचे ऐसा नहीं है, ऐसा नास्तिसे कहा। एक ओर राम, दूसरी ओर गाम;–एक ओर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा और दूसरी ओर राग, पर्याय आदि सारा जगत। आत्मा है ना ? वस्तु है ना ? वह विद्यमान वस्तु आनन्दसे भरपूर है। अहा ! बड़ा धीमन्त हो वह भी इसे सुनकर ठिठक जायेगा; उसे ऐसा लगेगा कि अरे, यह तो बात कोई और ही है, यह सच्ची बात है; हम जो यह मानते हैं कि व्यवहार से होता है, निमित्तसे होता है, उसकी अपेक्षा यह कोई अलग ही बात है ! इस पुस्तकमें समस्त सार—बहुत आगया है।

'इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा।'

एक आत्मामें ही रुचे ऐसा है क्योंकि वहाँ आनन्द भरा है। अन्यत्र कहीं रुचे ऐसा नहीं है, इसलिये वहाँ से हट जा और आत्मामें रुचि लगा।

एक बोल पूरा हुआ। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ६ का शेष भाग) (प्रवचनसार)

ऐसे गुणभेद होने पर उस स्वभावके आश्रयसे गुणगुणीके विकल्पका लोप हुआ। (गुणोंका लोप होता नहीं है) उसे विशेषण-विशेष्यपनेकी वासना अंतर्धान करके—ऐसा कहनेमें आता है। यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय—ऐसा जो विकल्पोंका विस्तार होता था वह रुक गया और निर्विकल्प अनुभव हुआ।

श्री समयसारमें भी इसी प्रकार ही कथन आता है : प्रथम श्रुतज्ञानसे आत्माके विकल्प द्वारा जानना पश्चात् निर्विकल्प होकर मतिश्रुतज्ञानको आत्माकी ओर झुकाना। शास्त्रकारके भावको समझे तो कल्याण होता है ऐसा है शेष वस्तु वचन अगोचर अगम्य है–वचनमें किस प्रकार कहा जाय ? अनुभवकी बात वाणीमें किस प्रकार आये ? आत्मा चैतन्य है और वाणी तो जड़ है, अतः आत्माके अनुभवकी बात पूर्णरूपसे वाणीमें आती नहीं। जो जीव ज्ञानमात्र आत्माका ही अनुभव करता है उसका मोह अवश्य नाश होता है। क्योंकि विकल्पका अभाव होनेसे मोहका कोई आश्रय ही रहेता नहीं है। मोह उत्पन्न ही नहीं होता, उसका नाश हुआ ऐसा कहनेमें आता है।

श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है कि : ''देह भिन्न केवल चैतन्यका ज्ञान जो।''–उसमें देव-गुरु-शास्त्रका ज्ञान नहीं कहा लेकिन द्रव्य-गुण-पर्यायके भेद बिनाका, राग बिनाका चैतन्य अकेला ज्ञान वर्तता है–ऐसा कहा है। इस प्रकार मोहकी सेना पर विजय प्राप्त करनेका उपाय मैंने प्राप्त किया–ऐसा आचार्य भगवान कहते है। (क्रमशः)

विपरीत मान्यताका जोर ! (उसके चार उदाहरण)

(१) विपरीत दृष्टि ही जीवको सीधा नहीं समझने देती। देखो, ''उदयानुसार विकार होता है''–ऐसा माननेवालेको भी उदयानुसार तो विकार होता ही नहीं; उसके शास्त्र–स्वाध्यायादिमें (भले ही विपरीत दृष्टिपूर्वक) मन्दराग तो वर्तता है; ज्ञानमें भी इसी प्रकार आता है; कर्मके उदयानुसार विकार होता है–ऐसा कहीं उसके ज्ञानमें तो ज्ञात नहीं होता, तथापि उसकी विपरीत दृष्टिका बल उसे ऐसा मनाता है कि ''उदयानुसार विकार होता है।'' उसकी विपरीत मान्यतामें मिथ्यात्वका इतना जोर पड़ा है कि अनन्ता उदय आये तो मुझे वैसा होना पड़ेगा–ऐसा उसका अभिप्राय वर्तता है; इसलिए उसमें तीव्र मिथ्यात्व सहित निगोददशाकी ही आराधनाका जोर पड़ा है।

(२) इसी प्रकार, विपरीत दृष्टिका दूसरा उदाहरणः–स्थानकवासीके तेरापन्थी लोग असंयमीके प्रति दया–दानादि भावोंको भी पाप मानते हैं। किसी जीवके बचाने का या दानादिका भाव हो, तब उसे अपनेकोकोमल परिणामरूप शुभभाव है; उस समय उसके ज्ञानमें भी ऐसा ही ख्याल आता है कि यह कुछ शुभपरिणाम है; उस समय ज्ञानमें कहीं ऐसा ख्याल नहीं आता कि ''यह पाप–परिणाम है'', किन्तु विपरीत श्रद्धाका जोर ऐसा है कि अपनेको शुभभाव होने पर भी उसे पाप मनाती है। दया–दानको पाप माननेवाले तेरापन्थीको भी दया–दानके समय कहीं पापभाव नहीं है; तथापि विपरीत दृष्टिके कारण वह उसे पाप मानता है।

(३) इसी प्रकार तीसरा उदाहरणः–जिनप्रतिमाके दर्शन–पूजन–भक्ति आदिमें शुभभाव है; तथापि स्थानकवासी उसे पाप मानते हैं; जिनप्रतिमाके दर्शनादिमें शुभभाव होते हैं तथापि, और ज्ञानमें भी उस समय ''यह शुभ है''–ऐसा आने पर भी, विपरीत मान्यताका जोर उस शुभको भी पाप मनाता है।

(४) एक चौथा उदाहरण यह है कि–दया, पूजा या ब्रतादिका भाव शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं है; तथापि मिथ्यादृष्टिकी विपरीत मान्यता उसे धर्म मानती है। उस शुभरागके समय अज्ञानीको भी ज्ञानमें तो ऐसा आया है कि–''यह राग हुआ,'' किन्तु धर्म हुआ–ऐसा कहीं ज्ञानमें नहीं आया है; अर्थात् रागके समय उस रागका ही ज्ञान हुआ है; तथापि विपरीत दृष्टिके कारण वह रागको धर्म मानता है। रागसे धर्म माननेवाले को स्वयं भी रागसे कहीं धर्म नहीं हो जाता, तथापि विपरीत मान्यताका जोर उसे इस प्रकार मनाता है।

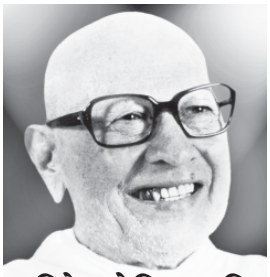

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–दृष्टिको स्थिर करनेके लिए सामनेकी वस्तु स्थिर होनी चाहिये; लेकिन दृष्टि तो पलटती रहती है, वह किस तरह स्थिर हो?

उत्तर :–सामने स्थिर वस्तु हो तो उस पर नजर करनेसे दृष्टि स्थिर हो जाती है। भले ही जब (दृष्टिरूप पर्याय) स्थिर न रह सकती हो तो भी ध्रुव पर नजर एकाग्र करनेसे अन्य सारी वस्तु नजरमें आ जाती है, सारा आत्मद्रव्य दृष्टिमें जाना जाता है। मूल बात यह है कि अन्दरमें जो आश्चर्यकारी आत्मवस्तु है, उसकी अन्दरसे महिमा नहीं आती। द्रव्यलिंगी साधु हुआ लेकिन अन्दरसे महिमा नहीं आती। पर्यायके पीछे समुचा ध्रुव महाप्रभु विद्यमान है—इसकी महिमा, आश्चर्य भासित हो तो कार्य होता ही है। आत्मा अनन्त अनन्त आनन्दका धाम है, इसको विश्वासमें लाना चाहिये। विश्वाससे जहाज चलता है और समुद्र पार हो जाता है, ऐसे ही अन्दरमें आत्माकी प्रभुताका विश्वास आये तब कार्य होता ही है।

जिसने जीवन्त ज्योति ऐसे चैतन्यका अनादर करके रागको अपना माना है, 'राग मैं हूँ' ऐसा मानता है, उसने अपनी आत्माका घात किया है। जिससे लाभ मानता है उसको स्वयंका माने बगैर उससे लाभ माना नहीं जा सकता। इसलिए रागसे लाभ माननेवाला स्वयंका ही घात करनेवाला होनेसे दुरात्मा है, आत्माका अनादर करनेवाला है, अविवेकी मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न :–इस परसे ऐसा होता है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका पात्र कौन है?

उत्तर :–यह पात्र ही है, लेकिन पात्र नहीं है—ऐसा मान लेता है। यही शल्य बाधक होती है।

प्रश्न :–क्या सविल्प द्वारा निर्विकल्प नहीं होता है?

उत्तर :–सविकल्प द्वारा निर्विकल्प नहीं होता, किन्तु कहा अवश्य जाता है। क्योंकि विकल्पको छोड़कर निर्विकल्पमें जाता है, यह बतानेके लिए सविकल्प द्वारा हुआ ऐसा कहा

श्री स्वयंप्रभु जिन-स्तुति

श्री स्वयंप्रभु शशिलंछन पति तीनहुं लोकके नाथ कहावें,
मित्रभूतभूपतिके नंदन विज्या नगर जिनेश्वर आवें;

जाता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें आता है कि 'रोमांच होता है' अर्थात् वीर्य अन्दर जानेके लिए उल्लसित होता है, ऐसा बताना है।

प्रश्न :–शास्त्राभ्यास आदि करने पर भी उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता, तो सम्यग्दर्शनके लिए क्या करना ?

उत्तर :–यथार्थमें तो एक आत्माकी ही रुचिपूर्वक सबसे पहिले आत्माको जानना, वही सम्यग्दर्शनका उपाय है। आत्माका सत्य निर्णय करनेवालेको पहिले सात तत्त्वोंका सविकल्प निर्णय होता है, शास्त्राभ्यास होता है, शास्त्राभ्यास ठीक है—ऐसा भी विकल्प होता है, लेकिन उससे यथार्थ निर्णय नहीं होता। जहाँ तक विकल्प रहित है, वहाँ तक परसन्मुखता है, परसन्मुखतासे सत्य निर्णय नहीं होता। स्वसन्मुख होते ही सत्य निर्विकल्प निर्णय होता है। सविकल्पता द्वारा निर्विकल्प होना कहा है, तो भी सविकल्पता निर्विकल्प होनेका सही कारण नहीं है। तब भी सविकल्पता पहिले होती है, इसीकारण सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होना कहा जाता है।

प्रश्न :–क्या सम्यग्दृष्टिको अशुभभावके सद्भावमें आयुष्य बंधती है ?

उत्तर :–सम्यग्दृष्टिको चौथे-पाँचवें गुणस्थानमें व्यापार-विषयादिका अशुभराग भी होता है; तथापि सम्यग्दर्शनका ऐसा माहात्म्य है कि उसको अशुभभावके समय आयुष्य नहीं बँधती, शुभभावमें ही बँधती है। सम्यग्दर्शनका ऐसा प्रभाव है कि उसके भव बढ़ते तो है ही नहीं; यदि भव होते भी है तो नीचा भव नहीं होता, स्वर्गादिका ऊँचा भव ही होता है।

प्रश्न :–जिसके प्रतापसे जन्म-मरण टले और मुक्ति प्राप्त हो ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन पंचमकालमें शीघ्र हो सकता है क्या ?

उत्तर :–पंचमकालमें भी क्षणभरमें सम्यग्दर्शन हो सकता है। पंचमकाल सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करनेके लिए प्रतिकूल नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो वीरोंका काम है, कायरोंका नहीं। पंचमकालमें नहीं हो सकता, वर्तमानमें नहीं हो सकता—ऐसा मानना कायरता है। बादमें करेंगे, कल करेंगे—इस प्रकार वायदा करनेवालोंका यह काम नहीं है। आज ही करेंगे, अभी करेंगे—ऐसे वीरोंका यह काम है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके समक्ष देखनेवालोंको पंचमकाल क्या करेगा ?

धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावें,
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित्त लावें।६।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *दो द्रव्योंकी भिन्नता तो पूज्य गुरुदेवके तथा आपके प्रतापसे कुछ-कुछ समझमें आयी है; किन्तु द्रव्य-गुण-पर्यायकी कैसे भिन्नता करके अनुभव करें तत्सम्बन्धी मार्गदर्शन दीजिये।*

समाधान :—एक द्रव्यसे दूसरा द्रव्य अत्यन्त जुदा है, उनके प्रदेशभेद हैं। और विभाव वह अपना स्वभाव नहीं है। इसलिये शास्त्रमें भेदज्ञान करनेको कहा है कि विभावसे विभक्त हो परन्तु गुण-पर्यायसे भेदज्ञान करनेका नहीं कहा है। आत्माके गुण-पर्यायोंके लक्षणोंको पहिचानकर, उनका ज्ञान करके, उनके भेदमें नहीं रुकते हुए एक अखंड चैतन्यपर दृष्टि रखनेसे उसमें जो अनन्तगुण हैं उनकी शुद्धपर्याय प्रकट होती है। गुण-पर्यायोंसे भेदज्ञान करनेका नहीं रहता, परन्तु उनका ज्ञान करना रहता है।

आत्मा अनन्तगुणोंसे गूँथा हुआ अभेद तत्त्व है। उसमें अनन्तगुण किस जातिके हैं कि—ज्ञानका लक्षण जानना, आनन्दका लक्षण निराकुलता, चारित्रका लक्षण स्थिरता ; ज्ञान जाननेका कार्य करे, आनन्द आनन्दका कार्य करे।—इसप्रकार गुणोंको उनके कार्य और लक्षणसे पहिचाना जा सकता है। उन्हें पहिचानकर गुणभेदमें रुकना वह रागमिश्रित विकल्प है। वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। परन्तु एक अखंड चैतन्यपर दृष्टि करके वहाँ स्थिर हो तो उसे स्वानुभूति प्रकट होती है। विकल्प तोड़कर मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ, इसप्रकार सामान्य अस्तित्वपर निःशंकदृष्टि करके, उसमें स्थिरता-लीनता-आचरण करे तो स्वानुभूति प्रकट होती है। दो द्रव्य जुदे हैं वह तो दिखाई देता है, तथापि भेदज्ञान तो परसे तथा विभावसे करना रहता है और गुण-पर्यायका ज्ञान करनेका है। आत्मा अनन्तानन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण है; अनन्त द्रव्य उसके निकट हैं; तथापि अपना अस्तित्व सँभाले रखता है। उसके अनन्त गुण-धर्म हैं, उन सबका ज्ञान करनेके लिये उनके लक्षण और कार्योंको पहिचानना। फिर उनके भेद विकल्पमें नहीं रुकना है। गुण तो अपना स्वरूप है, वे अपनेसे जुदे नहीं हैं। इसलिये उनका ज्ञान करके गुण-भेदोंमें या पर्यायभेदमें न रुककर चैतन्यपर दृष्टि रखना।

श्री ऋषभानन जिन-स्तुति	श्री ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन, सुरनर करहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन;

उन्हें जानना कि यह गुण है, यह पर्याय है, परन्तु विकल्पमें रुकनेका कोई प्रयोजन नहीं है, मात्र जाननेका प्रयोजन है। पश्चात् स्वयं अपनेमें स्थिर हो तो स्वानुभूति प्रकट होती है।

उच्चसे उच्च शुभभाव भी विभाव है, अपना स्वरूप नहीं है; इसलिये उससे अपनेको पृथक् करता है। फिर वह जानता है कि पर्याय वह अंश है और गुण है वह भी एक–एक भेदरूप है—ऐसा जानकर अखंड सामान्य चैतन्यपर दृष्टि देता है जिससे विशेष पर्यायें प्रकट होती हैं, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रकट होते हैं। 'सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व'—सर्व गुणोंके अंश प्रकट होते हैं। चैतन्यमें विशेष लीनता होनेपर मुनिदशा आती है और अन्तर्मुहूर्त–अन्तर्मुहूर्तमें निर्विकल्पदशा होती है।—स्वरूपमें बारम्बार जम जाते हैं और उसीमेंसे पूर्ण वीतरागदशा प्रकट होती है।

प्रश्न :—*द्रव्यकी कोटि उच्च है और पर्यायकी निम्न है, वह प्रमाणकी अपेक्षासे कहा जाता है या नयकी?*

समाधान :—वह नय अपेक्षासे बराबर है। द्रव्यकी कोटि उच्च ही है। द्रव्य शाश्वत, अनादि–अनंत है, द्रव्यमें अनन्तगुण भरे हैं तथा अनन्त शुद्ध पर्यायें प्रकट करनेकी शक्ति भी उसमें है, इसलिये द्रव्यकी कोटि उच्च है। पर्याय प्रतिक्षण पलटती है, इसलिये उस अपेक्षा पर्यायकी कोटि निम्न है।

पर्यायका वेदन होता है, द्रव्यका वेदन नहीं होता। द्रव्य दृष्टिमें आता है और पर्याय वेदनमें आती है तथा पर्यायमें केवलज्ञान प्रकट होता है, उस अपेक्षासे पर्याय पूजनीय एवं वन्दनीय कही जाती है।

द्रव्यकी कोटि उच्च है, क्योंकि द्रव्य अनन्तशक्तियोंसे परिपूर्ण है, द्रव्यकी दृष्टि करनेसे मुक्तिका मार्ग शुरू होता है, उसके बिना मुक्तिमार्गकी शुरुआत नहीं होती, उस अपेक्षासे द्रव्यकी कोटि उच्च है।

पर्याय प्रकट वेदनमें आये तथा वह प्रकट हो, तब द्रव्य जैसा है वैसा अपने वेदनमें आता है। इसलिये कभी–कभी पर्यायकी मुख्यता कही जाती है, परन्तु वस्तुस्थितिसे देखें तो द्रव्यकी कोटि उच्च है।

वीरसेनसुतलशय, सिंहलच्छन जिन सोहै,
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमन मोहै;

बाल विभाग

कपिल ब्राह्मणकी कथा

वनवास दरम्यान वनमें भ्रमण करते हुए सीताजीको प्यास लगी और वे आगे बढ़ते हुए एक गाँवमें कपिल ब्राह्मणके घर आये, ब्राह्मणीने सीताजीको पानी पिलाया इतनी देरमें घरका मालिक कपिल ब्राह्मण आया और उसने रामचंद्रजी आदिको अपशब्द कहे जिससे सीताजीने कहा कि ऐसे क्रोधीके घरमें नहीं ठहरना है और वनकी ओर प्रयाण किया, वर्षाऋतुका समय था रास्तेमें एक वटवृक्षकी कंदरा देखी जो घर समान लग रही थी वहाँ ठहरे। वहाँ पर एक दंभकर्ण नामक यक्ष रहता था उसने ऐसे तेजस्वी पुरुषोंको देखकर अपने स्वामीसे बात की तो उसके स्वामीने आकर अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह बलभद्र-नारायण है इसलिये उनके प्रति वात्सल्य हुआ और क्षणमात्रमें वे जहाँ सो रहे थे वहाँ एक मनोज्ञ नगरीका निर्माण किया....

प्रातः सुंदर गीतोंके शब्दोंसे जागृत हुए। स्वयंको रत्नजड़ित शय्या पर देखा, अत्यंत मनोहर महल था, सभी प्रकारकी सामग्रीसे भरपूर था, सेवकगण उनका आदर कर रहे थे। नगर कोट-दरवाजोंसे शोभित था। वे पुरुषोत्तम महानुभावका चित्त ऐसा नगर तत्काल बना देखकर भी आश्चर्य नहीं हुआ। अपूर्व वस्तुको देखकर आश्चर्यान्वित होना वह क्षुद्र पुरुषकी चेष्टा है। सभी प्रकारकी सामग्रीसे भरपूर नगरमें उन सुंदर चेष्टाके धारक रहने लगे, मानो कि वे देव ही न हो। यक्षाधिपतिने रामके लिये नगरीकी रचना की इसलिये वह नगरी पृथ्वी पर रामपुरी कहलाई। उस नगरीमें सुभट, मंत्री, द्वारपाल, नगरके मनुष्य अयोध्या समान थे।

राजा श्रेणिक गौतमस्वामीसे पूछते हैं कि, हे प्रभो! वे तो देवकृत नगरमें रहे और ब्राह्मणकी स्थिति क्या हुई उसे कहिये। तब गणधरने कहा कि ब्राह्मण दूसरे दिन कुल्हाडी लेकर वनमें गया, लकड़ी ढूंढ़ते उसकी आँख ऊँची हुई, उसने नीकटमें एक सुंदर नगर देखा और आश्चर्यचकित हुआ। उसने अनेक प्रकारकी रंगीन ध्वजाओंसे शोभित शरदके मेघ समान सुंदर महल देखे। पुनश्च कैलासका पुत्र हो ऐसा अति उज्ज्वल एक राजमहल देखा। यह देखकर वह मनमें सोचने लगा कि पशुओंसे भरी इस अटवीमें मैं लकड़ी लेने प्रतिदिन आता हूँ। उसमें यह रत्नाचल समान सुंदर महलोंसे संयुक्त यह नगरी कहाँसे बन गई ? यहाँके सरोवर जलसे परिपूर्ण और कमलोंसे शोभित है वह मैंने कदापि देखे नहीं थे। मनोहर उद्यान है जिसमें चतुर जन क्रीड़ा कर रहे है, ध्वजासंयुक्त देवालय शोभते है वह मैंने कदापि देखे नहीं थे। मनोहर उद्यान है जिसमें चतुरजन क्रीड़ा कर रहे है, ध्वजासंयुक्त देवालय शोभायमान है। हाथी, घोडा, गाय, भेंसोंके समूह दृश्यमान हो रहे है, घंटारव हो रहा है। यह नगरी स्वर्गमेंसे आयी है या पातालमेंसे नीकली है। कोई महाभाग्यके निमित्त यह एक स्वप्न समान लग रही है, कोई देवमाया है, कोई गंधर्वका नगर

अमलान ज्ञान केवल प्रगट, लोकालोक प्रकाशधर,
तल चरनकमल वंदन करत, पापपहार परांहिं पर।७।

है और मैं पित्तसे व्याकुल हुआ हूँ। इनके पास क्या मेरे मृत्युके चिह्न लग रहे हैं?

इस प्रकार विचार करके वह विषादको प्राप्त हुआ। इतनेमें उसने अनेक प्रकारके आभूषणों पहनी हुई एक स्त्रीको देखा। उसके पास जाकर उसने पूछा : हे भद्रे! यह किसकी नगरी है? उसने कहा यह रामकी नगरी है। क्या आपने सुना नहीं है? जहाँ राजा राम है, उसके भाई लक्ष्मण है और सीता उसकी स्त्री है। नगरीके बीचमें यह विशाल महेल है, शरदके मेघसमान उज्ज्वल, उसमें वे पुरुषोत्तम बिराजते है। लोगोंमें उनका दर्शन दुर्लभ है। उन्होंने सभी गरीबोंको मनवांछित धन देकर राजा समान बना दिया है। तब ब्राह्मणने कहा हे सुंदरी। मैं किस उपायसे उनके दर्शन कर सकता हूँ उसे आप बताईये। ऐसा कहकर लकड़ीकी गठरीको नीचे फैंककर हाथ जोड़कर उसके पैरमें गिर गया। तब वह सुमाया नामकी यक्षिणीने कृपा करके कहा हे विप्र! इस नगरीके तीन दरवाजे हैं, वहां पर देव भी प्रवेश नहीं कर सकते, बड़े-बड़े योद्धा रक्षाके रूपमें बैठे है, रात्रिको भी जागते है। जिनके मुख सिंह, वाघ, हाथी समान है। उससे मनुष्यों भी भयको प्राप्त होते है। यह पूर्वद्वार है जिसके बास भगवानके बड़े बड़े मंदिरों है, मणिके तोरणसे मनोज्ञ लगते है। उसमें इन्द्रों द्वारा वंदित अरिहंत भगवानके बिम्ब विराजमान है। वहाँ भव्यजीव सामायिक, स्तवनादि करते हैं।

जो भावसहित नमस्कारमंत्र बोलता है वह अंदर प्रवेश कर सकता है। जो पुरुष अणुव्रतके धारक है, गुणशीलसे शोभित हो उस पर राम परमप्रीतिसे कृपा करते है। यक्षिणीके अमृततुल्य वचन सुनकर ब्राह्मण अति हर्षित हुआ। धनप्राप्तिका उपाय मिलनेसे उसने यक्षिणीकी खूब स्तुति की, उसके सर्व अंग रोमांचित हो गये। उसने चारित्रशूर नामके मुनिके पास जाकर हाथ जोड़कर नमस्कार करके श्रावककी क्रियाके भेद पूछने लगा। तब मुनिने उसे श्रावकका धर्म सुनाया और चार अनुयोगका रहस्य बतलाया। ब्राह्मण धर्मका रहस्य जानकर मुनिकी स्तुति करने लगा कि हे नाथ! आपके उपदेशसे मुझे ज्ञानदृष्टि प्रकट हुई है। जैसे तृषातुरको शीतल जल मिले और ग्रीष्मके तापसे संतापित पथिकको छाँया मिले, भूखेको मिष्टान्न भोजन और रोगीको औषध मिले वैसे कुमार्गमें चलनेवाला ऐसा मुझे आपके उपदेशका रसायण मिला है, मानों कि समुद्रमें डूबते मनुष्यको जहाज मिला है। सर्व दुःखोंका नाश करनेवाला यह जैनका मार्ग मुझे आपकी कृपासे मिला है, जो अविवेकीके लिये दुर्लभ है। तीन लोकमें आप समान मेरा कोई हितेच्छु नहीं है। आपसे मुझे ऐसा जिनधर्म मिला है। ऐसा कहकर मुनिके चरणारविंदमें नमस्कार करके ब्राह्मण अपने घर गया। (क्रमशः) ✻

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

नीचे दिये गये विकल्पमेंसे प्रश्नका सही उत्तरसे पूर्ति करें।

(१) उपयोगको बदलना उसे विकल्प कहते हैं, वे विकल्प ..... की पर्याय है। (चारित्र, दर्शन, ज्ञान)

(२) मुनिके छह आवश्यकमें समस्त जीवों पर समताभाव रखना अथवा सामायिक करना उसे ..... कहते हैं। (समता, वंदना, स्तवन)

(३) तीर्थंकरोंके शाश्वत जन्मस्थान अयोध्यामेंसे पांच तीर्थंकरोंके कुल ..... कल्याणक हुए है। (१४, १८, २०)

(४) परिषहका भाव वह .....का दोष है। (दर्शन, चारित्र, ज्ञान)

(५) बारह प्रकारके तपको पूर्ण करके पालन करवेवाले ..... होते हैं। (श्रावक, मुनि, अविरत सम्यग्दृष्टि)

(६) कर्मके बंध अनुसार ही उदय होता नहीं है, और उदय अनुसार ..... होता नहीं है। (बंध, भाव, आस्रव)

(७) व्यवहारसे पंच परमेष्ठी तथा निश्चयसे स्वयंका आत्मा ही शरण है ऐसा विचार करना वह ..... भावना है। (अनित्य, संसार, अशरण)

(८) ज्ञानी कर्मके उदयको स्वयंसे भिन्न जानता होने पर भी कर्मके वश होकर ..... भावरूप परिणमित होता है। (औदयिक, क्षायिक, औपशमिक)

(९) छहों पर्याप्तियाँ ..... में पूर्ण हो जाती है।(एक घड़ी, अंतर्मुहूर्त, एक समय)

(१०) ..... शास्त्रकी महत्ता बतलाते जयसेन आचार्यदेव कहते हैं कि ''जयवंत वर्तो वे कुन्दकुन्द आचार्यदेव कि जिन्होंने महा तत्त्वसे परिपूर्ण प्राभृतरूपी पर्वत बुद्धिरूपी शिर पर उठाकर भव्य जीवोंको समर्पित किया है।''(नियमसार, समयसार, प्रवचनसार)

(११) जीवकी वैभाविक शक्ति ..... है। (नित्य, अनित्य, हेय)

(१२) ज्ञानके तीन प्रकारके दोषमें अवधिज्ञानमें ..... दोष होता नहीं है। (संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय)

(१३) पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत बोल–२६४में आता है कि, ''मोह, राग, द्वेष आदि जो विकारी अवस्थाएँ आत्मामें उत्पन्न होती है वे जड़की ओर झुकनेवाला भाव होनेसे एवं आत्माका ..... न होनेसे जड़ है।'' (विभाव, स्वभाव, शुभभाव)

(१४) पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत बोल नं. १०४में आता है कि, ''मैं शुद्ध हूँ'' इस प्रकार

स्वीकारते ..... की रचना शुद्ध ही होती है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। (गुण, द्रव्य, पर्याय)

(१५) जीवको दुःखका निमित्त कारण ..... कर्मका उदय है। (शुभ, संपूर्ण, अशुभ)

(१६) बावीस परिषहोंमें सत्कार पुरस्कार परिषह ..... कर्मके निमित्तसे होता है। (चारित्र मोहनीय, दर्शन मोहनीय, अंतराय)

(१७) सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट काल ..... है। (छह आवली, एक समय, अंतर्मुहूर्त)

(१८) दश प्राणोंमेंसे १४वें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवलीको ..... होता है। (श्वासोश्वास, कायबल, आयुष्य)

(१९) शुद्ध निश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ प्रतिक्रमणका स्वरूप ..... शास्त्रमें कहा है। (नियमसार, समयसार, पंचास्तिकाय)

(२०) संवरके साथ अविनाभावरूपसे ..... होती है। (बंध, मोक्ष, निर्जरा)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) ज्ञान	(६) भाव	(११) नित्य	(१६) चारित्रमोहनीय
(२) समताा	(७) अशरण	(१२) संशय	(१७) छह आवली
(३) १८	(८) औदयिक	(१३) स्वभाव	(१८) आयुष्य
(४) चारित्र	(९) अंतर्मुहूर्त	(१४) पर्याय	(१९) नियमसार
(५) मुनि	(१०) समयसार	(१५) सभी	(२०) निर्जरा

यह जिनवचनरूपी औषधि विषय सुखका नाश करनेवाली है। भव्य जीवोंको अमृत समान है, जिनवचनके सेवनसे भव्यजीव अमर बनते हैं। इसलिये यह जिनवचनरूपी औषधि जन्म-मरणकी नाशक है। दीर्घकाल तक रहनेवाला रोग और अकस्मात् उत्पन्न होनेवाली व्याधिको जिनवचन तत्काल नष्ट करता है, सर्व दुःखोंका नाश करके मुक्ति सुख देता है। इसलिये हे मुनि! ऐसे जिनवचनरूपी औषधिका तू सतत् सेवन कर।

भरतक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सम्बन्धी माहिती

चौबीस तीर्थंकरोंके नाम गतांकमें दिये गये थे इसलिये क्रम अनुसार भगवानका नाम समझ लेना।

क्रम	शरीर ऊँचाई (धनुष)	आयुष्य	वैराग्य निमित्त	दीक्षा नगर	वन	वृक्ष
१	५००	८४ लाख पूर्व	निलांजना मृत्यु	प्रयाग	सिद्धार्थ	वटवृक्ष
२	४५०	७२ लाख पूर्व	उल्कापात देखकर	अयोध्या	सहेतुक	सप्तच्छद
३	४००	६० लाख पूर्व	मेघपटलका नाश	श्रावस्ति	सहेतुक	शाल
४	३००	४० लाख पूर्व	गंधर्वनगरका नाश	अयोध्या	उप्रोधान	शाल
५	३००	४० लाख पूर्व	पूर्वभवका स्मरण	अयोध्या	सहेतुक	प्रियंगु
६	२५०	३० लाख पूर्व	पूर्वभवका स्मरण	कौशाम्बी	मनोहर	प्रियंगु
७	२००	२० लाख पूर्व	वनलक्ष्मीका नाश	काशी	सहेतुक	शिरीष
८	१५०	१० लाख पूर्व	बीजली देखकर	चन्द्रपुरी	सर्वर्दक	नागतरु
९	१००	२ लाख पूर्व	उल्कापात देखकर	काकन्दी	पुष्पक	शाल
१०	८०	१ लाख पूर्व	हीमका नाश देखना	भद्रिलापुर	सहेतुक	पलाश
११	७०	८४ लाख वर्ष	वनलक्ष्मीका नाश	सिंहनादपुर	मनोहर	तिन्दुक
१२	६०	७२ लाख वर्ष	पूर्वभवका स्मरण	चंपापुर	क्रिडोद्यान	पाटलतरु
१३	५०	६० लाख वर्ष	मेघपटलका नाश	कंपिला	सहेतुक	जम्बूवृक्ष
१४	५०	३० लाख वर्ष	उल्कापात देखकर	अयोध्या	सहेतुक	पीपल
१५	४५	१० लाख वर्ष	उल्कापात देखकर	रत्नपुर	शालवन	दीर्घपर्ण
१६	४०	१ लाख वर्ष	पूर्वभवका स्मरण	हस्तिनापुर	शालवन	नन्दीतरु
१७	३५	९५ हजार वर्ष	पूर्वभवका स्मरण	हस्तिनापुर	सहेतुक	तिलक
१८	३०	८४ हजार वर्ष	मेघपटलका नाश	हस्तिनापुर	सहेतुक	आम्र
१९	२५	५५ हजार वर्ष	बिजलीको देखकर	मिथिला	श्वेतवन	अशोक
२०	२०	३० हजार वर्ष	पूर्वभवका स्मरण	राजगृही	नीलवन	चंपक
२१	१५	१० हजार वर्ष	पूर्वभवका स्मरण	मिथिला	चित्रवन	बकुल
२२	१०	१ हजार वर्ष	केदमें प्राणी वध हेतु	गिरनार	सहस्राम्रवन	मेघश्रृंग
२३	९	१०० वर्ष	जातिस्मरण होना	वाराणसी	अश्ववन	धवलवृक्ष
२४	७ हाथ	७२ वर्ष	जातिस्मरण होना	कुंडलपुर	ज्ञानवन	शालवृक्ष

जीवके असाधारण भाव

औपशमिकभाव	क्षायिकभाव	क्षायोपशमिकभाव	औदयिकभाव	पारिणामिकभाव
१. सम्यक्त्वभाव	१. क्षायिक सम्यक्त्व	१. सम्यक्त्व	१. मनुष्यगति	१. जीवत्व
२. चारित्रभाव	२. क्षायिक चारित्र	२. चारित्र	२. तिर्यंचगति	२. भव्यत्व
	३. क्षायिकदर्शन	३. चक्षुदर्शन	३. नरकगति	३. अभव्यत्व
	४. क्षायिक ज्ञान	४. अचक्षुदर्शन	४. देवगति	
	५. क्षायिकदान	५. अवधि दर्शन	५. क्रोध	
	६. क्षायिक लाभ	६. देश संयम	६. मान	
	७. क्षायिक भोग	७. मतिज्ञान	७. माया	
	८. क्षायिक उपभोग	८. श्रुतज्ञान	८. लोभ	
	९. क्षायिक वीर्य	९. अवधिज्ञान	९. पुरुषलिंग	
		१०. मनःपर्ययज्ञान	१०. स्त्रीलिंग	
		११. कुमतिज्ञान	११. नपुंसकलिंग	
		१२. कुश्रुतज्ञान	१२. मिथ्यादर्शन	
		१३. कुअवधिज्ञान	१३. अज्ञान	
		१४. कुदान	१४. असंयम	
		१५. लाभ	१५. असिद्धत्व	
		१६. भोग	१६. पीतलेश्या	
		१७. उपभोग	१७. पद्मलेश्या	
		१८. वीर्य	१८. शुक्ललेश्या	
			१९. कृष्णलेश्या	
			२०. नीललेश्या	
			११. कापोतलेश्या	

१. ''सर्व औदयिकभाव बन्धके कारण हैं। ऐसा नहीं समझना चाहिये, किन्तु मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग–यह चार भाव बन्धके कारण हैं।

२. ''...यदि जीव मोहके उदयमें युक्त हो तो बन्ध होता है; द्रव्यमोहका उदय होने पर भी जीव शुद्धात्म भावनाके बल द्वारा भाव मोहरूप परिणमित न हो तो बन्ध नहीं होता। यदि जीवको कर्मोदयके कारण बन्ध होता हो तो संसारीको सर्वदा कर्मका उदय विद्यमान है इसलिये उसे सर्वदा बन्ध होगा, कभी मोक्ष होगा ही नहीं।'' इसलिये ऐसा समझना कि कर्मका उदय बन्धका कारण नहीं है किन्तु जीवका भाव मोहरूप परिणमन बन्धका कारण है।(देखो, प्रवचनसार (हिन्दी) पृ. ५८-५९ जयसेनाचार्य कृत टीका)

''पारिणामिक भावके अतिरिक्त चारों भाव क्षणिक हैं, एक समय पर्यंतके हैं; और उसमें भी क्षायिक भाव तो वर्तमानमें है नहीं; उपशमभाव हो तो वह अल्पकाल टिकता है और उदय-क्षायोपशम भाव भी प्रति समय बदलते हैं; इसलिये उन भावो पर लक्ष करे तो वहाँ एकाग्रता नहीं हो सकती और न धर्म प्रगट हो सकता है। त्रिकालस्वभावी पारिणामिकभावका माहात्म्य जानकर उस ओर जीव अपनी वृत्ति करे (- झुकाव करे) तो धर्मका प्रारम्भ होता है और उस भावकी एकाग्रताके बलसे धर्मकी पूर्णता होती है।''

प्रश्न : जीवके औपशमिक, क्षायिक, औदयिक, क्षायोपशमिक भावोंको पारिणामिक भाव किस अपेक्षासे कहा जाता है? उत्तर–१. जीवकी पर्यायके प्रत्येक भावको वह अपने परिणाम होनेसे अपनी अपेक्षासे पारिणामिक भाव कहा जाता है। २. इन चार भावोंको कर्मकी अपेक्षासे (कर्मके साथ अभाव अथवा सद्भाव सम्बन्ध बतलानेके लिये) औपशमिकादि कहा जाता है।३. पाँचवें पारिणामिकभावको परमपारिणामिक भाव कहा जाता है और उसके आश्रयसे ही धर्मका प्रारंभ, वृद्धि एवम् पूर्णता होती है। (-नियमसार)

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-३० से ६-५० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-४५ से ९-४५ : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : २-४५ से ३-४५ : श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ३-४५ से ४-१५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ७-३० से ८-३० : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

卐 हे जीव! जिनेन्द्र भगवानकी वाणीका रात-दिन निरंतर अभ्यास करने योग्य है। कैसी है जिनवाणी? प्रमाण और नयके अनुकूल जीवादि पदार्थोंका वर्णन करती है इसलिये निपुण है। और प्रमाणनय-निक्षेप निरुक्ति अनुयोग आदि भेदों द्वारा जीवादि पदार्थोंका विस्तारसे वर्णन करती है इसलिये विपुल है और पूर्वापर विरोधादिक दोषसे रहित है इसलिये शुद्ध है और वह जिस अर्थको बताती है वह किसी भी प्रकार फिर नहीं सकता (बदल नहीं सकता) ऐसा होनेसे अत्यन्त दृढ़पनेके कारण निकाचित है और जिनवाणीसे अन्य उत्कृष्ट तीन लोकमें कोई नहीं इसलिये अनुत्तर है और सर्वजीवोंको हितरूप है, किसीको अहितकर नहीं है इसलिये सर्वहित है और द्रव्यमल जो ज्ञानावरणादिक और भावमल जो रागादिक तथा क्रोधादिक उनका नाश करती है इसलिये कलुषहर है। ऐसी जिनवाणी ही निरंतर अभ्यास करने योग्य है। जिनवाणी बिना जीवको कोई शरण नहीं इसलिये सर्वप्रकारसे हितरूप जानकर मनुष्यजन्म जिनागमकी आराधना द्वारा सफल करो।२०२३।

(शिवकोटि आचार्य, भगवती आराधना)

卐 इस संसारमें विषयांध जीव कौतूहलपूर्वक भोग-भोगकर छोड़े पदार्थोंको मोहमूढ़ जीव फिर-फिर इच्छते हैं। तू इस परवस्तुरूप भोगादिमें इतना तीव्र रागी हुआ है कि उसे तू बारम्बार आश्चर्ययुक्त और महत्वपूर्ण दृष्टिसे देख रहा है जैसे इस क्षणसे पहले ये भोगादि पदार्थ पूर्वमें कभी देखे नहीं या अनुभवे नहीं। परन्तु भाई! ये भोगादि पदार्थ तूने पूर्वमें अनंतबार भोगे हैं। अरे! तूने अकेले ही नहीं परन्तु अनंत जीवोंने अनंतबार तेरे ही वर्तमान अभिलाषित भोगादिक पदार्थोंको भोगा है और छोड़ा है। परन्तु भाई! उसकी तुझे कुछ भी सुध नहीं रही, इससे ही यह तेरी तथा दूसरे अनंत जीवोंकी अनंतबार छोड़ी उच्छिष्ठ (झूँठन)को तू बारबार फिर-फिर आदरपूर्वक भाता है और आश्चर्ययुक्त होकर ग्रहण किया करता है।३८८। (श्री गुणभद्राचार्य, आत्मानुशासन, श्लोक-५०)

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• भाई ! यह तो दुनियाके सामने झुकना है। जिन्हें सुखकी चाह हो। उन्हें सच्चा निर्णय करना ही पड़ेगा। ऐसे स्वयंको सर्व प्रकारसे देव-गुरु-शास्त्रके स्वरूपका निश्चय हुआ हो तो प्रतिपक्षीको समझानेकी सामर्थ्य रहे, अपनी आस्तिक्य-बुद्धि बनी रहे तथा प्रतिकूल-प्रसंगमें भी डॉवाडोल न हो बैठे – इन्हीं हेतुओंसे सभी पहलूओंका सच्चा निर्णय कर लेना चाहिए। किन्तु पक्षपाती होकर देवादिकी भक्ति-पूजादि करनेसे कोई मिथ्यात्व दूर नहीं होता।७२७।

• ज्ञानका सम्यक्‌रूप व मिथ्यारूप परिणमन अपने ही कारणसे है, श्रद्धाके कारणसे नहीं। श्रद्धा सम्यक् होनसे ज्ञान सम्यक् हुआ व भिथ्यात्वके होनसे ज्ञान मिथ्या था – परमार्थसे ऐसा नहीं है। ज्ञानका सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व तो ज्ञानकी ही जाति है; ज्ञानका ही वैसा परिणमन हुआ है। ज्ञानगुण व श्रद्धा-गुणकी जाति ही भिन्न है।७२८।

• जो सच्चे देवादिके प्रति भक्तिभाव न आते हों तो समझो कि तुम्हें धर्मकार्य नीरस लगते हैं: इसका कारण क्या ? रूचि क्यों उत्पन्न नहीं होती, उमंगपूर्वक उद्यम नहीं होता तो लगता है कि तुम्हारा भविष्य बुरा है। तुम्हारा चौरासीके अवतारमें भटकना चालू ही रहेगा – ऐसा दिखता है। जैसे आहारकी रुचि न रहती हो तो मरण निकट सा लगता है; वैसे ही यदि तुम्हारे अंतरंगमें धर्मवासना न जगी, देव-गुरु के प्रति उल्लास व उमंग न आए तो तुम्हारा संसार-चक्र अभी चालू है। लोग भले ही तुम्हें भला कहें, परन्तु जिनके तुम भक्त हो उन केवलज्ञानीसे तुम्हारा कपट छिपा नहीं रह सकता।७२९।

• भाई ! तुमने यदि पराश्रय-बुद्धि न छोडी तथा स्वतत्त्व-ओर दृष्टि न डाली तो तेरी विद्वता क्या काम की ? तेरा शास्त्रज्ञान किस कामका ? – विद्वता तो उसे कहते हैं कि जिससे स्वाश्रय कर निज-हित सधे।७३०।

• यह चैतन्यविद्या तो भारतकी मूल विद्या है। पूर्वमें तो बालपनसे ही भारतके बालकोंमें ऐसे चैतन्यविद्याके संस्कार डालते थे, माताएँ भी धर्मात्मा होती थीं। वे अपने बालकों को ऐसे उत्तम संस्कार सिखलाती, और बालक भी अन्तर-अभ्यास कर अन्तरमें उतर कर आठ-आठ वर्षकी उम्रमें ही आत्माका अनुभव कर लेते थे। भारतवर्षमें चैतन्यविद्याका ऐसा देदिप्यमान - धर्मकाल था। उसके बदले आज तो इस चैतन्यविद्याका श्रवण होना भी कितना दुर्लभ हो गया है।७३१।

३६
आत्मधर्म
जनवरी २०२६
अंक-५, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-1-2026
Posted on 5-1-2026

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org